पारो

'मेवात' में खरीदी हुई एक औरत

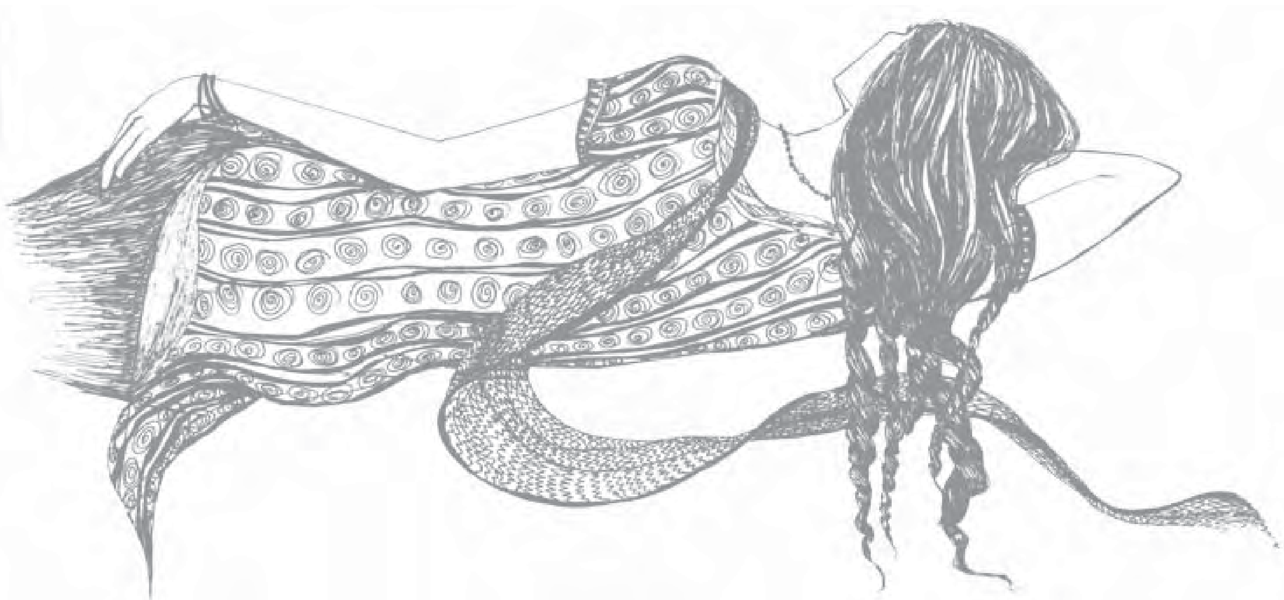

जागोरी
JAGORI

प्रकाशन जागोरी, 2009
बी-114, शिवालिक, मालवीय नगर
नई दिल्ली-110017
दूरभाष : 91-11-26691219, 26691220
हेल्पलाईन : 91-11-26692700
टेली फेक्स : 91-11-26691221
ई-मेल : jagori@jagori.org
वेबसाइट : www.jagori.com

मुखपृष्ठ चित्रांकन
कादंबरी

शोध, तथ्य, विश्लेषण व रपट
शफीकुर रहमान खान

शोध सहायक
दिनेष गौतम, वन्दना तडागी

तथ्य संग्रह
मो० कासिम खान, आबिद हुसैन, जमषेद खान,
सुश्री मेमवती, मो० सलीम व सुश्री तपस्या रानी

पारो

'मेवात' में खरीदी हुई एक औरत

जागोरी - एक नज़र

जागोरी की शुरुआत 1984 में हुई थी। यह औरतों का प्रशिक्षण, संप्रेक्षण, डॉक्यूमंटेशन व संदर्भ केंद्र है । जागोरी व्यापक स्तर पर औरतों के जीवन पर सीधा प्रभाव डालने वाले अनेक मुद्दों जैसे सांप्रदायिक हिंसा, आर्थिक नीतियां, प्रजनन स्वास्थ्य कार्यक्रम व नीति और औरतों पर होने वाली हिंसा पर काम करती है । जागोरी के मुख्य उद्देश्य हैं -

- ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में औरतों व बालिकाओं के सशक्तिकरण से जुड़े मुद्दों पर चेतना जागृति लाना व संघर्ष करना ।
- विभिन्न मुद्दों पर काम कर रहे समूहों के लिए सृजनात्मक पठन सामग्री व महत्वपूर्ण विषयों पर संप्रेक्षण सामग्री का प्रकाशन व वितरन करना ।
- महिला समूहों, स्वयंसेवी संस्थाओं व विकास खण्ड की सूचना तथा विश्लेषण की ज़रूरतों को मद्देनज़र रखते हुए औरतों के अधिकारों पर केंद्रित संदर्भ केंद्र का गठन करना ।
- भारत में औरतों के दर्जे पर जानकारी प्रदान करना, मौजूदा सूचना स्रोतों का नारीवादी नज़रिए से विश्लेषण करते हुए महिला संबधी महत्वपूर्ण विषयों पर सक्रिय शोध कार्य करना ।

जागोरी की शोध प्रक्रिया सहभागी और नारीवादी है । हम प्रभावित व पीड़ित लोगों के साथ मिलजुलकर उनके जीवन की स्थितियों का विश्लेषण करते हैं तथा समस्याओं के सार्थक समाधान के लिए सामूहिक प्रयास करते हैं । इन शोधों से उभरी जानकारी सामाजिक बदलाव का आधार भी बनती है जैसे -

- समुदायिक समस्याओं पर एकजुटता व संगठन की समझ बनाना ।
- मुद्दे के प्रति नारीवादी नज़रिए के साथ सामाजिक सोच बढ़ाना ।
- सकारात्मक सुझावों व सवालों के साथ उन कार्यक्षेत्रों एवं सरकार के साथ पैरवी करना ।

पिछने तीन वर्षों में अपने फैलोशिप कार्यक्रम के तहत् अलग-अलग राज्यों में महिला आंदोलन से जुड़े कार्यकर्ताओं और नारीवादी संगठनों के साथ जुड़कर जागोरी ने महिला हिंसा के विभिन्न पहलुओं पर शोध कार्यक्रम चलाए हैं । शफीकुर रहमान द्वारा किया गया यह शोध इन्हीं में से एक है। यह अध्ययन मेवात में पारों नाम से ज्ञात महिलाओं पर आधारित है ।

साभार

समाज की समस्याओं को प्रतिबिम्बित करने के लिये औरतों के बहुतेरे उपयोग देखे गये हैं। मगर जब समस्या से स्वयं महिलायें पीड़ित हों तो समस्या के कारण को दूसरी ओर मोड़ दिया जाता है। ऐसा ही है हरियाणा, पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में खरीदी जाने वाली लड़कियों के साथ जिन्हें मीडिया ने पारो का सम्बोधन दिया है। खरीद कर लाई जाने वाली इन लड़कियों को मीडिया और समाज ने एक तरह से अनदेखा ही किया है। इनके आयात के कारण को कन्या भ्रूण हत्या से जोड़ कर मुद्दे के मर्म को कम करने की कोशिश की गई है। जबकि इन लड़कियों की खरीददारी के पीछे पूरी सांस्कृतिक व सामाजिक परिर्वतन की प्रक्रिया की परम्परा निहित है। इन लड़कियों के इलाकों की गरीबी और खरीद कर लाने वालों की जरूरत बता कर जहां अपने कर्तव्यों की ईतिश्री की जा रही है, वहीं ये प्रश्न छोड़े जा रहे हैं कि जब इलाके की गरीबी के कारण लड़कियों को बेचा जा सकता है तो फिर उन क्षेत्रों से लड़कें क्यों नहीं बेचे जाते ?

ऐसे कई सवाल मैं स्वयं से और अपने सामाजिक कार्यकर्ता बंधुओं से पूछ रहा था। उसका जवाब पाने में सर्वप्रथम योगदान कमला भसीन जी का रहा जिन्होंनें हमें रास्ता सुझाया और मुझे इस मुद्दे पर काम करने की सलाह दी। जागोरी की कल्याणी मेनन–सेन व सीमा श्रीवास्तव के मार्गदर्शन ने अध्ययन को दिशा दी और हमारे दल को सदैव ही प्रेरित किया।

इस मुद्दे के असली कारणों की पड़ताल करने वाला अपनी तरह का ये पहला अध्ययन है। हम जागोरी को साधुवाद देना चाहेगें जिसने मुद्दे के मर्म को समझा और अध्ययन के लिये संसाधन जुटाये।

हम मतीउर रहमान खान, हिन्दी 'चरखा' के सम्पादक सुलतान अहमद, राजेश कुमार, मोहम्मद फजल, नुॅह बाजार के भाई उदय सिंह, मेवात जिला अदालत के हमारे अधिवक्ता मित्र मो0 असद खान व मेवात की महिला सामाजिक कार्यकर्ता गौशिया (जो स्वयं एक पारो हैं) का आभार प्रकट करना चाहेंगे जिन्होंने आरम्भ से ही इस पूरे शोध पर मंथन किया और भावनात्मक तौर पर लगातार जुड़े रहे।

हम आभारी हैं उन तमाम प्राथमिक स्रोतों के जिन्हें हम पारो का सम्बोधन दे रहे हैं साथ ही उन तमाम लोगों के भी जिन्होंनें इस चुनौती पूर्ण दुस्साहसी कार्य में तमाम जोखिमों के बावजूद अपना सहयोग दिया।

मेव वंशावली ज्ञाता मोहम्मद दाउद, मेव इतिहास के ज्ञाता हाजी मुहम्मद खाँ, हाजी सुफेदा मिरासी एवं गुलशन डुंगेजा मिरासी जिन्होंनें मेव इतिहास और औरतों की स्थिति पर अपनी बेबाक राय दी और अंत में ईनायत अली खॉ युसुफजेई मेमोरियल चैरिटेबल ट्रस्ट – गया (बिहार), का विशेष धन्यवाद जिन्होंने सर्वेक्षण कार्य के लिये आवश्यक सहयोग किया।

शफीकुर रहमान खान

अध्ययन परिचय

विगत कुछ वर्षों से हरियाणा, राजस्थान, प0 उत्तर प्रदेश व पंजाब के क्षेत्रों में बाहरी क्षेत्रों से लड़कियां लाने का सिलसिला जनसंचार माध्यमों में आता रहा है। संचार माध्यमों ने इन लड़कियों को पारो के नाम से सम्बोधित किया। अखबारों, विशेषकर अंग्रेजी अखबारों और संचार माध्यमों ने इसे प्रमुख विषयवस्तु के बतौर प्रस्तुत किया है। हाल के वर्षों में जब कन्या भ्रूण हत्याओं ने गम्भीर रूप धारण किया तो कन्या भ्रूण हत्याओं के परिणाम के रूप में भी इस समस्या को संचार माध्यमों और कन्या भ्रूण हत्या विरोधी कार्यकर्ताओं ने बखुबी उछाला है। इसके बावजूद इस विषय पर आज तक कोई अध्ययन उपलब्ध नहीं है। लड़कियों की कमी के कारण दूसरे क्षेत्रों में "विवाह" की बात की गई है पर विषम क्षेत्रीय होने अथवा इन क्षेत्रों की सामाजिक सांस्कृतिक परम्पराओं के प्रभाव आदि के संदर्भ में किसी का ध्यान नहीं गया है। इस क्षेत्र की विशेष परिस्थिति और परम्परा का भी किसी प्रकार अध्ययन नहीं किया गया है।

अखबारों में प्रकाशित होने वाली खबरों ने स्पष्ट किया है कि इन "विवाहों'' में पैसों का लेन–देन भी शामिल रहता है। कुछ लोगों ने तो इसे अपना धंधा बना लिया हैं। हाल के वर्षों में मानवीय तस्करी पर कार्यरत संस्था 'शक्तिवाहिनी' ने कई लड़कियों को मुक्त भी कराया जिन्हें खरीदा और बेचा गया था।

इस पूरे क्षेत्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में लड़कियों के खरीदे बेचे जाने की परम्परा रही है भले ही इसे "विवाह" धन से जोड़कर देखा जाये। नियोग[1] और करेवा[2] की ऐतिहासिकता भी लड़कियों के लाये जाने पर प्रश्न चिन्ह लगाती हैं। मध्यकालीन व आधुनिक इतिहास में गाँव गाँव जाकर लड़कियों की मांग दर्ज करने का काम बुरदापोशों (तस्कर) की जिम्मेदारी हुआ करता था। आज भी लड़कियों से "विवाह" करने के लिये पैसे चुकाने के मामले मिल जाते हैं।

अखबारों और अन्य माध्यमों ने इन लड़कियों की खरीददारी का कारण लैंगिक असंतुलन बताया है। वास्तव में 1991 और 2001 की जनगणना ने इनके तर्कों की पुष्टि भी की मगर यक्ष प्रश्न था कि होने वाले "विवाहों'' का आयु वर्ग 1980 और 90 के दशकों का था। इन दशकों में इन इलाकों में अपेक्षाकृत लैंगिक संतुलन देखने में आता है। दूसरा प्रश्न था कि ये लड़कियां जहां से खरीदी जाती थीं वहां भले ही लैंगिक असंतुलन की स्थिति भयानक नहीं मगर लड़कियां तो कम ही थीं। ऐसे में स्वाभाविक है कि लोग अपनी लड़कियों का "विवाह" इतनी दूर क्यों करेंगें ?

---

1. नियोग प्रथा जिसके अंतर्गत बडे भाई की पत्नी के साथ भाई की मृत्यु के पश्चात अथवा उसके जीवित रहते हुए भी यौन संबंध स्थापित करने की अनुमति होती है। इस प्रथा का सबसे पवित्र रुप भाई की मृत्यु के पश्चात उसकी विधवा के साथ विवाह किया जाना है।
2. करेवा के अंतर्गत परिवार का कोई भी पुरूष किसी भी महिला जिससे उसका खून का संबंध ना हो, यौन सम्बंध रख सकता है। प्रेम चौधरी के अनुसार विधुर पुरूष अक्सर अपने 10–12 वर्ष के पुत्रों का विवाह बड़ी उम्र की लड़कियों से कर देते थे ताकि वो स्वयं उनसे यौन संतुष्टि प्राप्त कर सकें। पुत्रवधु से ससुर, जेठ आदि के यौन संबंध के किस्सों पर आधारित अनेकों कहावतें और लोक गीत हैं।

शोध किये जाने की सोच के पीछे दूसरा बड़ा कारण था कि ये वो क्षेत्र हैं जहां महिलाओं के विरूद्ध हिंसा के मामलों की बड़ी संभावनायें थी। वहां खरीदकर लाई जाने वाली महिलाओं के विरूद्ध हिंसा के स्तर का अध्ययन इन क्षेत्रों में करेवा, नियोग जैसी प्रथाओं जो संस्कृतिकरण के दौर से गुजर रही हैं, से जुड़ा हुआ है 'मेवात' जैसा क्षेत्र भी पिछले कई वर्षों से अंधाधुन्ध मुस्लिम संस्कृतिकरण की चपेट में है। उनकी अपनी परम्पराओं और मुस्लिम संस्कृति के द्वंद में औरतों के अधिकारों और आजादी पर कुठाराधात का अध्ययन भी अपने आप में एक बड़ा मसला है।

ये अध्ययन तब और अधिक प्रसांगिक हो जाता है जब किसी लड़की को दाम चुका कर लाया जाता है। जो सीधे–सीधे मानवीय तस्करी का मामला बन जाता है। फिर विगत कुछ दिनों में कई ऐसी घटनायें सामने आईं जिनमें इन लड़कियों की अधिकार हीन स्थिति और समाज के दृष्टिकोण का मामला स्पष्ट दिखता है। अध्ययन किये जाने की पृष्ठभूमि में सबसे बड़ा कारक रहा है– लड़कियों का आयात अथवा तस्करी। ये कन्याभ्रूण हत्याओं के कारण हुई लड़कियों की कमी है अथवा संस्कृतिकरण के द्वंद से गुजरती मेव जाति की पूर्व परम्परा नियोग व करेवा जैसी प्रथाओं का तुष्टिकरण? हमने इसे नृवंशीय अध्ययन के दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया और पारो के आयात की पूरी प्रक्रिया को वर्तमान स्थिति के बजाय इसके इतिहास में टटोलने की कोशिश की।

अध्ययन समाप्त हुआ और प्राथमिक तौर पर एक समझ बनी कि ''पारो का आयात लड़कियों की कमी के कारण किया जाता है'' अधूरा सच है। अध्ययन स्पष्ट करता है कि पारो का आयात तथा लड़कियों की खरीद बिक्री इस क्षेत्र के लिये न तो कोई नयी बात है और न ही सामाजिक संज्ञान लेने योग्य मानी जाने वाली परिघटना। मानसिकता स्पष्ट है– मर्द को रोटी पानी व यौन आवश्यकता हेतु लड़की की आवश्यकता होती है। इसके लिये वो "विवाह" करे या फिर दाम चुकाये। यद्यपि हमने अध्ययन में इस प्रक्रिया को "विवाह" धन के दृष्टिकोण से भी देखने की कोशिश की है।

साहित्य स्त्रोत

क्षेत्र की सांस्कृतिक विरासत को अपने भीतर समेटे पंडुल कथा (पाण्डव कथा– महाभारत का स्थानीय संस्करण) यद्यपि अब बहुत कुछ बदल चुकी है और इसको आज के हिसाब से संपादित कर दिया गया है। फिर भी ये इस क्षेत्र को समझने में बहुत उपयोगी हैं। इसका पारम्परिक संस्करण आज भी स्थानीय लोक कलाकारों की कैसेट्स में उपलब्ध है। जिसे राजस्थान के अलवर में आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

इसके अलावा स्थानीय विद्वानों ने मेव जाति के इतिहास और परम्पराओं पर बहुत कुछ लिखा है। जो अप्रकाशित तथा प्रकाशित दोनों है। "मेव कौम क्षत्रिय" जैसी स्थानीय ऐतिहासिकता को समेटने वाली किताब के लेखक सदीक अहमद एक जूनियर इंजिनियर हैं। जिन्होंने लुप्त होती सांस्कृतिक विरासत व मौखिक इतिहास को समेटने की भरसक कोशिश की है। यद्यपि इनकी लेखनी काफी हद तक चीजों को ढंकने का प्रयास करती है और संस्कृतियों का आधुनिक समाज और विचार के अनुसार प्रस्तुतीकरण का प्रयास करती है। वो चीजों की अपने हिसाब से व्याख्या करते हैं। इनके अतिरिक्त ''गांधी ग्राम घासेडा'' के कई लोगों ने कई किताबें लिखी हैं। जो अप्रकाशित हैं। इनमें मुस्लिम

संस्कृतिकरण का स्पष्ट चिन्ह दिखता है। ये पुस्तकें शेरमोहम्मद मेव जैसे स्थानीय विद्वानों ने लिखी हैं। इस प्रकार की अधिसंख्य पुस्तकों के नाम 'मेव कौम', 'क्षत्रीय मेव' और 'मेव कौम का इतिहास' आदि हैं।

- शैल मायाराम की मेव जाति पर उनकी पुस्तक ''अगेंस्ट हिस्ट्री अगेंस्ट स्टेट'' में दर्ज अध्ययन इस क्षेत्र की विरासतों पर बेहतर समझ बनाने के लिये उपयोगी है। मेवों के संस्कृति-पथ को समझने में ये बेहतर मार्गदर्शन करती है। इनकी अन्य पुस्तक में तबलीगी जमायत का मेवों पर असर और संस्कृतिकरण की लहर को विस्तार से दर्ज किया गया है। जिसका अध्ययन भी इस बयार को समझने मे उपयोगी हैं।*

- प्रेम चौधरी जिन्होंने हरियाणा पर बेहतर और सर्वश्रेष्ठ अध्ययन किया है। मेवों को मुस्लिम राजपूत सम्बोधित करते हुए करेवा और महिलाओं की परिवारिक भागीदारी को बेहतर ढंग से प्रस्तुत किया है।*

- दास्तान-ए-मेव कौम मेवात (अप्रकाशित) : स्व0 सुभान घासेडा, गाँधी ग्राम, नुॅह
- तारीख-ए-मेव : मौलाना अब्दुल शकुर शिकरावी, शिकरावा पुनहाना
- केन्द्रीय सचिवालय पुस्तकालय- नई दिल्ली

विषय पर पूर्ववर्ती अध्ययन

इस विषय पर अब तक कोई अध्ययन उपलब्ध नहीं है। दो वर्ष पूर्व जमायते इस्लामी (बिहार) के एक नेता नसीरउद्दीन खाँ ने स्थानीय जमायते इस्लामी कार्यकर्ता मो0 कासिम आजाद के साथ मिलकर बाहर से लाई गई लड़कियों को सुचीबद्ध करने की कोशिश की थी। इसके बाद कोई अध्ययन अथवा विशेष प्रयास अब तक नहीं हुए हैं। इस क्षेत्र से संचार माध्यमों ने कोई समाचार भी प्रेषित नहीं किया है तथा किसी भी समाजिक संगठन ने इस मुद्दे पर कोई कारवाई नहीं की। दूसरा छोर जो राजस्थान के अलवर का इलाका है, वहां 'शक्तिवाहिनी' ने कुछ लड़कियों को मुक्त कराया मगर उसके आंकड़े भी प्रयास के बावजूद प्राप्त नहीं हो सके।

अध्ययन में निमित्त प्रयोग

सम्पूर्ण अध्ययन में निम्नांकित शोध विधियों का प्रयोग किया गया।

1. नृवंशीय अध्ययन
2. वैयक्तिक साक्षात्कार
3. अंतरवैयक्तिक साक्षात्कार
4. समूह सम्मेलन
5. वैयक्तिक नमुना अध्ययन (Case study)

सम्पूर्ण अध्ययन में कुल 372 प्राथमिक स्रोत (Primary respondent) जिन्हें हम पारो सम्बोधन दे रहे हैं, शामिल किये गये। ये हरियाणा के मेवात जिले के तीन प्रखण्डों क्रमशः फिरोजपुर, नगीना व नुॅह के कुल

✶ Persistence of a Custom: Cultural Centrality of Ghunghat (Social Scientist, Vol. 21, No. 9/11. (Sep. - Oct., 1993), pp. 91-112)
An Alternative to the "Sati" Model: Perceptions of a Social Reality in Folklore (Asian Folklore Studies, Vol. 49, No. 2. (1990), pp. 259-274)
Contours of Communalism: Religion, Caste and Identity in South-East Punjab (Social Scientist, Vol. 24, No. 4/6. (Apr. - Jun., 1996), pp. 130-163)
Lustful Women, Elusive Lovers (Indian Journal of Gender Studies, Vol. 8, No. 1, 23-50 (2001))

25–25 गाँवों से वरीयता व उपलब्धता के आधार पर लिये गये हैं। इसके अलावा अध्ययन में पारों के कुल 44 स्वामीयों व प्रत्येक गाँव से एक अर्थात कुल 75 पंचायत प्रतिनिधी और 45 समाजिक नेतृत्वकारी अथवा धार्मिक व जातीय नेताओं को भी द्वितीय स्रोत के बतौर शामिल किया गया है। इसके अलावा उपलब्धता के आधार पर प्रशासनिक पदाधिकारीयों व स्वयंसेवी संगठनों के कार्यकर्ताओं का भी साक्षात्कार किया गया है।

यहाँ प्रस्तुत अध्ययन मानवीय तस्करी, आयात का नृवंशीय कारण और संक्षिप्त वातावरण पर आधारित है।

तालिका 1ः सम्पूर्ण अध्ययन

लक्षित विकास खण्ड	फिरोजपुर झिरखा	नुँह	नगीना
अध्ययन में शामिल गाँवों की संख्या	25	25	25
पारों महिलायें	118	96	158
पारों स्वामी	14	10	20
पंचायत प्रतिनिधी	25	25	25
समाजिक नेतृत्वकारी	15	20	10

क्षेत्र

'मेवात' अरावली पहाडी श्रृंखला का वो क्षेत्र है जो राजस्थान के भरतपुर, धौलपुर व अलवर तथा हरियाणा के मेवात जिलों के अंतर्गत आता है। ये यमुना नदी के पश्चिम राष्ट्रीय राजधानी के दक्षिण पश्चिम हरियाणा का दक्षिणी व राजस्थान का पुर्वोतर भाग है। ये पूरा क्षेत्र मेव जाति की बहूलता वाला है। अरावली के इस पूरे क्षेत्र का नाम इन्हीं मेवों के नाम पर विशेषणात्मक वर्ण के तौर पर उपयोग किया जाता है। मेव स्वयं को पाण्डवों का वंशज बताते हैं जो तुगलकों के शासन काल में 14वीं शताब्दी से 17वीं शताब्दी के मध्य मुसलमान हो गए और धीरे धीरे पूरा मेवात इलाका मुसलमान होता चला गया।

हमारे अध्ययन का क्षेत्र हरियाणा का मेवात जिला है। देश की राजधानी दिल्ली से करीब 60 किलोमीटर दूर 4 अप्रैल 2005 को

चित्र 1ः ब्लाकों की संख्या गाँव व जनसंख्या

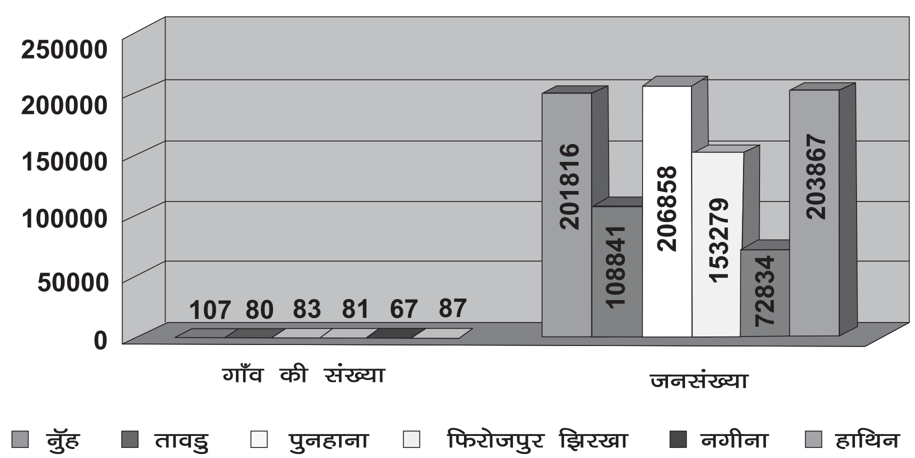

हरियाणा सरकार ने गुडगाँव एवं फरीदाबाद जिले से काट कर इस मेवात जिले के गठन की अधिसूचना जारी की और ये विधिवत हरियाणा के 20वें जिले के रूप में स्थापित हुआ।

* इसके छः विकास खण्ड हैं।

नूँह ताउरो पुनहाना	फिरोजपूर झिरखा नगीना हथिन

ये उल्लेखनीय है कि गुड़गॉव व फरीदाबाद जैसे शहरों से लगा ये जिला हरियाणा का सबसे पिछड़ा जिला है। सर्व शिक्षा अभियान और विभिन्न स्वयंसेवी संस्थाओं की पोल खोलता ये जिला देश में शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़ेपन में अव्वल है। उल्लेखनीय तथ्य है कि महिलाओं की साक्षरता दर देश में सबसे कम (1.76 से 2.13) यहीं है।

नृवंशीय दृष्टि से मेव निम्नांकित वंशों के वंशज हैं।

दूहलोत अथवा यदू वंश	कन्हैया
तोमर (भीमा)	पाण्डव
कछवाहा	रामचन्द्र
पाहट	तारा गढी चौहान
छिडकलोत अथवा न्यायी (नाई)	

(मिरासीयों के मौखिक इतिहास से)

इन में सर्वाधिक मेव दूहलोत (मीणा मेव) हैं। जिनके कुल मेव क्षेत्र में 360 मूल गाँव हैं।

अधिसंख्यक मेव पारंपरिक कृषक हैं। जिनका अपना इतिहास है। जमीन से जुड़े होने एवं राजधानी के करीब होने के कारण वैदिक काल से ही इस जाति का इतिहास बर्बरता से जोड़ा गया है। बहुतेरे शासकों ने इन्हें लुटेरा शब्द से भी नवाजा, आज भी इस क्षेत्र में ऐसे कई गाँव हैं जिनका पेशा चोरी ठगी आदि है। इस क्षेत्र का इतिहास आक्रमण व लूट से परिपूर्ण है, जिनमें स्त्री– धन की लूट भी शामिल है। आज भी भरतपूर राजस्थान की गढी मेवात (चोर गढी के नाम से प्रसिद्ध) इसकी गवाह है, जहां के लोगों का मुख्य व्यवसाय आज भी चोरी और लूट है।

1733 में जाट महाराजा सूरज मल द्वारा स्थापित भरतपूर (राजस्थान) के अंतर्गत आने वाले व अस्त होते मुगल राजाओं की नाक में दम करने वाले दादू बहाड (छिकरलोत वंश) हसन खाँ मेव और कुँवर मोहम्मद अशरफ के नेतृत्व में अंग्रेजों के विरूद्ध मेवों ने लगातार संघर्ष व विद्रोह किया। साफ है ये मुख्य धारा से अलग थे और मुस्लिम शासकों से विद्रोह के कारण ये मुसलमानों से अधिक जाटों से अधिक नजदीकी पाते थे। जो इनके इतिहास के अनुसार इनके भाई (गोत्र के अनुसार भी) थे।

✶ (स्त्रोत http://www.haryana-online.com/ मेवात विकास अभिकरण, व मेवात विकास अभिकरण व राष्ट्रीय सांख्यिकी संग्रहालय, नई दिल्ली)

'पारो' एक परिचय

पारो का सहज शाब्दिक अर्थ है, जमुना पार की कोई लड़की या महिला। स्थानीय भाषा के अनुसार परली पार की बेरबानी (टहल पानी करने वाली) अर्थात उस पार की लड़की जिसका सीमित उद्देश्य हो। 'पारो' शब्द का सामाजिक अर्थ है एक लड़की जो यौन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अथवा वंश चलाने के उद्देश्य से या अधिकांशतः रोटी बनाने जैसी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लायी गयी हो। सहज अर्थ वाला ये शब्द न सिर्फ भौगोलिक अर्थों वाला है अपितु सामाजिक बंटवारे एवं शोषण के स्तर का पैमाना भी है। ये तय करता है कि औरतों की सामाजिक स्थिति क्या होगी।

इस साधारण शब्द की ये डरावनी यात्रा आज से करीब 35 वर्ष पूर्व से आरंभ हुई। इस तरह की शुरूआत ही घिनौने उद्देश्य की पूर्ति के लिए ट्रक ड्राइवरों द्वारा की गई।

पुरबिया राज्यों की यात्राओं के दौरान उन क्षेत्रों की समस्याओं का बेजा इस्तेमाल ट्रक ड्राइवरों ने आरंभ किया और वहां से शादियां करना आरंभ किया। ये शादियां दो क्षेत्रीय संस्कृतियों के मिलन जैसे शाब्दिक आडम्बरों से युक्त शुद्ध व्यवसाय के लिए किये गये कर्म थे। जहां लड़कियों का परिवार जवान लड़कियों से ससम्मान मुक्ति चाहता है। वहीं शादी करने वाले जिम्मेदारी से मुक्त, आसानी से उपलब्ध हो रही कमसीन लड़की प्राप्त करना। जिसे उन्हें अपनी इच्छा अनुसार उपयोग करने या बदलने की आजादी प्राप्त है। यहां एक तथ्य नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि पारो अधिकांशतः दूसरी, तीसरी या चौथी स्त्री होती है और उम्र का फासला कम से कम दोगुना।

मेव महिलाओं व 'पारो' की सामाजिक पृष्ठभूमी

इस क्षेत्र का इतिहास आक्रमण व लूट से परिपूर्ण है। जिसमें औरत धन की लूट भी शामिल है। यहां औरतों को वस्तु मात्र की तरह गिरवी रखने या बेच डालने या फिर लूट लेने की परंपरा रही है। यहां अन्य परंपराओं के अलावा 'नियोग' व 'करेवा' जैसी प्रथा भी विद्यमान है।

उल्लेखनीय है कि इस जाति में करीब 20 वर्ष पूर्व तक परिवार के सभी भाई अपनी–अपनी पत्नियों के अलावा एक और महिला को रखा करते थे। जो सभी भाइयों के साथ यौन संबंध रखा करती थी। ये इनके क्षत्रिय शौर्य व सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक था। ऐसा नहीं है कि इनसे विधिवत विवाह नहीं किया जाता था। मुस्लिम संस्कृति में संक्रमण के बाद से ये नियोग प्रथा से इंकार करते हैं। घरेलू कामकाज व खेती के लिए औरतों के उपयोग के पीछे 'नियोग' एक बड़ा कारण है। साथ ही औरतों को गिरवी रखे जाने या बलपूर्वक लूट लिये जाने के पीछे 'नियोग' व 'करेवा' जैसी प्रथाओं से इंकार नहीं किया जा सकता। इस समाज में औरतों की पूरी तस्वीर शोषण व भोग की वस्तु जैसी है। ज्ञात है कि ये स्वयं को पाण्डवों का वंशज कहते हैं और इनके गोत्र भाइयों में आज भी ये व्यवस्था मौजूद है।

तबलीगी जमायत और जमायत ए इस्लामी के प्रभाव ने स्थितियों में परिवर्तन लाया। इस प्रथा पर एक हद तक सामाजिक रोक लगाने में सफल रहे वो परंतु खेतों व घरों में काम करने के नाम पर महिलाओं का लाना बढ़ गया। इस काम के दौरान मैं कई महिलाओं से मिला। जिन्होंने सहजता से परिवार के लगभग सभी पुरुषों के साथ यौन सम्बंधों को स्वीकारा।

अपनी यादों को बांटती हुई फिरोजपुर नमक के सरपंच की पत्नी अपने जीवन को याद करते हुए बताती हैं कि ''आज से करीब 10–15 साल पहले औरतों के पास केवल एक जोड़ी कपड़े हुआ करते थे। जिन्हें रात के समय धो देना होता था और रात के समय बदन पर दूसरा कपड़ा लपेटकर सोना होता था।'' ये गरीब की मजबूरी नहीं औरतों के भोग यंत्र होने का अकाट्य प्रमाण है। ये स्थिति उस काल की है जब मेवों में आर्थिक संवर्धन अधिक था और इलाके की जमीन–जायदाद पर कब्जे थे। बाद के वर्षो में ये क्रमशः समाप्त होता गया।

फिरोजपुर नमक की एक पारो आशिया स्पष्ट करती हैं कि रात के समय औरतों के बदन पर कपड़े की आवश्यकता मानने का सवाल ही नहीं, आखिर उन्हें बच्चा पैदा

हाल के वर्षों में करीब 5–6 वर्षों से सरकार द्वारा की गई पहल का कुछ परिणाम आंशिक ही सही मगर आया अवश्य है (इस पहल के अंतर्गत जमीनों की रजिस्टरी में महिलाओं को राजस्व में 2 प्रतिशत की छूट प्रदान की गयी है।)

करने के लिऐ ही तो रखा गया है। दिन में औरतों को कृषि–कार्य व रोटी बनाना और रात को मर्द के बिस्तर पर होना उनका जन्मजात कार्य माना जाता है।

'मेव' जातीय मान्यतानुसार औरतें या पत्नियां (यहां बेरबानी कहते हैं, जिसका शाब्दिक अर्थ है टहल पानी करने वाली) हवा की तरह हैं। जो कब दगा दे जायें किसी को नहीं पता। इसलिए इन्हें विशेष चीजों से दूर ही रखे जाने को कहते हैं। अतः संपत्ति व जमीनों की हिस्सेदारी में उनकी साझेदारी की बात करना तो बेमानी होगी।

प0 बंगाल से लायी गई एक पारो 'रशीदा' सुबह तीन बजे भाग गई। कहां गई? किसी को पता नहीं और किसी को कोई दुख भी नहीं था। हां, टी0टी0 दुखी है उसके 5 हजार के मूलधन का नुकसान जो हुआ है। दुख तो लाजिमी हैं, उसने उसे बेचने का इंतजाम कर लिया था मगर वो तो निकल गई। चौपाल पर चर्चा होती है लोग उसे रण्डी की उपाधी से नवाजते हैं। सब हां में हां मिलाते हैं। बाकी ये तो रशीदा जानती हैं और उसकी सहेली भी जो मुझे सारी घटना बताती हैं, कि उसे एक अंधे बूढ़े को बेचना था। इसलिये गांव के युवक और टी.टी. उसे एक कमरे में बन्द करके तैयार कर रहे थे। वो बताती है ''बेचारी जब रोती चीखती तो खाना नहीं दिया जाता था। जब हालत बहुत खराब हो गई तो भाग गई।'' कहां गई के जवाब में वो कहती है कि ''पता नहीं

बस जहन्नुम से निकलना था सो निकल गई, कुछ होगा तो मर जायेगी या कोठे पर जायेगी पर दो वक्त की रोटी तो खायेगी।''

टी.टी. दलाल है और उसकी जिन्दगी लड़कियों को लाकर बेचने से ही चलती है। मगर जब कोई रशीदा जाती है तो उन्हें नुकसान लग जाता है।

'पारो' और 'मेव' महिलाओं की तुलना करना एक कठिन कार्य है। सहज अर्थो में 'पारो' मेव महिलाओं के लिए किसी खतरे से कम नहीं होती है। सहज है, गांव में आई कोई सुन्दर पारो, मेव महिलाओं में असुरक्षा बोध पैदा कर देती है। जाने किस परिवार के मुखिया का दिल उस पारो पर आ जाये ?

वहीं दूसरी तरफ 'पारो' अपनी स्थितियों से असंतुष्ट होती हैं। मगर समझौते की मजबूरी और महज दो जून की रोटी के लिये संघर्ष कर रही होती है। उन्हें किसी भी तरह केवल अपना जीवन व्यतीत करना होता है। उन्हें पता होता है कि ''उसके अस्तित्व का अर्थ है एक वस्तु का जीवन, जो उपभोग के लिए है।''

'पारो' अपनी नियती जानती है, उसे यथार्थता का बोध है। वो सिर्फ अपना बदला लेती है। मेव घरों को तोड़ने और इनकी संपत्तियों को बर्बाद करना इनकी कोशिश होती है। परिवार को बदनाम करने की कोशिश में ये जोर–जोर से हंसती है। मर्दों से हंसी मजाक करती है और मार खाती है। मगर विरोध जारी रहता है। कभी–कभी तो घर का सामान लेकर भाग जाती है या फिर बिक जाती है।

यद्यपि अधिसंख्य 'पारो' अपनी नियती और स्थिति से समझौता ही करती है। मगर कुछ ऐसी भी हैं जो विद्रोह करती हैं और भाग जाती हैं। मगर कहां ये किसी को पता नहीं चलता। विद्रोह की इस कहानी का एक रूप और है। वो है उन लड़कियों का यौन व्यवसाय अपना लेना। वो भी खुलेआम उसी शहर में ताकि किसी भी हाल में उन्हें घर लौटना ना पड़े। अपना मन बहलाने और अजनबीयों के बीच किसी अपने की ललक में ये कभी–कभी दूसरी लड़कियों का आयात भी करती हैं। हमारे सर्वेक्षण के प्रथमतः निष्कर्ष इसकी पुष्टि करते हैं कि यहां बस जाने में सफल हुई महिलायें यहां के पुरुषों को 'पारो' उपलब्ध कराने में अग्रणी रही हैं।

पारो के नाम से पुकारी जाने वाली ये महिलायें हर तरह के समझौते करती हैं। शारीरिक–मानसिक जैसे आडंबरयुक्त शब्दों को तिलांजली दे इस आस में कि काश कोई अच्छा आदमी मिल जाये, ये सदैव बिकने को तैयार रहती हैं। मगर ये यथार्थ नहीं होता, किसी को 'अच्छा' तो क्या 'आदमी' मात्र भी नहीं मिलता है।

यासमीना के शब्दों में हां वो टिकती हैं, मगर सारा रस चूस जाने के बाद किसी लंगड़े लूले बुड्ढे के पास उसकी रोटी बनाने, उसका पखाना–पेशाब देखने वास्ते। वो विद्रोह करती हैं, उनका विद्रोह पता ही नही चल पाता। अगर वो भाग जाये तो बाहरी दुनियां एक लड़की के लिये सुरक्षित नहीं मानी जा सकती। रही बात पुलिस की तो स्वयं पुलिस वाले ही बताते हैं कि, ''लड़कियां आती हैं तो वो खरीद–बिक्री की बात नहीं बतातीं,

जिसके कारण पुलिस वाले मुकदमा दर्ज नहीं करते। अब उन्हें कौन बताये कि जिस देश की पुलिस को बिना किसी कसूर के एक आदमी को जेल की कोठरी की वर्षों हवा खिलाने की महारत हासिल हो, उसे मानवीय तस्करी के अलावा अन्य धाराओं का भी ज्ञान होना चाहिये।

तालिका 2: मेवात में 'पारो' की उपस्थिति

प्रखण्ड	**गॉव**	**आबादी घर**	**पारो की संख्या**
नुॅह	फिरोजपुर नमक	1000	115
	सतपुतियाका	50	8
	घासेडा बीचौंजिया	100	20
तावडु	छारौडा	200	30
	ढिलमकी	250	15
	शिकारपुर	300	30
हाथिन	रूपडाका	200	22
	मलाई	100	17
	गोराक्षर	50	
पुनहाना	झटाना	400	45
	शिकरावा	300	60
	जमालगढ	200	25
नगीना	हसनपुर	100	21
	ब्दरपुर	150	25
	तेर	200	30
फिरोजपुर झिरखा	कोलगॉव	300	40
	तीगॉव	100	15
	जोधीया बॉस	100	15
कुल		**4100**	**583**

(तथ्य प्रथमतः स्थानीय अनुमान पर आधारित हैं।)

मेवात के कुल छः विकास खण्डों के तीन-तीन गांवों में पारो महिलाओं की कुल संख्या के निर्धारण के लिये एकत्रित नमूने स्पष्ट कहते हैं।

$$\text{एक परिवार में पारों का औसत} = \frac{583 \text{ (पारों महिलाओं की संख्या)}}{4100 \text{ (कुल परिवार की संख्या)}} = 0.1421$$

अर्थात यहां के कुल 100 परिवारों में 14 पारो महिलायें शामिल हैं। यानि, यहां की कुल आबादी का 14 प्रतिशत 'पारो' हैं। 14 पारो महिलाओं का औसत यहां की कुल महिला आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा है। जहां की कुल आबादी का 47 प्रतिशत महिलाएं और 53 प्रतिशत पुरुष हैं अर्थात् जहां सम्पूर्ण लैंगिक असंतुलन 6 प्रतिशत है, वहां उसकी पूर्ति 14 प्रतिशत आयात से की जा रही है।

तालिका 3ः मेवात में प्रखण्डवार कुल परिवारों की संख्या और जनसंख्या (1991 की जनगणना के अनुसार)

प्रखण्ड	परिवारों की संख्या	कुल जन–संख्या
नुॅह	18618	136392
तावडु	10801	75335
हाथिन	19413	142698
पुनहाना	16816	125088
नगीना	9820	72824
फिरोजपुर झिरखा	12473	92249
कुल	**87941**	**634586**

मेवात में पारों महिलाओं की कुल संख्या = 87941 X 0.1421 = 12496.4161

विवाह

इस समाज में समान्यतः दो प्रकार के विवाह प्रचलित हैं। एक जिसमें लड़की अपने साथ दान दहेज ले कर आये और दूसरा जिसके तहत मर्द लड़की के परिवार को रकम चुका कर लाये। पहला तरीका चिंताजनक नहीं मगर दूसरा तरीका बड़ा खतरनाक है। जिसमें तमाम बातों के अलावा सदैव ही इस बात का डर रहता है कि अच्छा पैसा मिलने या फिर किसी सामाजिक सहयोग के लिये कभी भी इन लड़कियों को मुक्त किया जा सकता है अर्थात किसी अन्य के साथ हॉक दिया जा सकता है। यहॉ ध्यान रहे कि वो लड़की 'पारो' (खरीदी हुई बाहरी लड़की जो इसी उद्देश्य की पूर्ति का एक साधन है) के अलावा 'मेव' भी हो सकती है।

विवाह के पारंपरिक रूप जो देखने में आते हैं, वो हैं, सामान्य विवाह और नियोग। पारंपरिक सामान्य विवाह में विवाह धन की बयार वर पक्ष की ओर होती है। यद्यपि कुछ मामलों में ये उलट भी जाती है और इसकी दिशा विपरीत भी होती है। मगर नियोग विवाह संपत्ति में बंटवारे की स्थिति ना आने देने के उद्देश्य से होता है। नियोग, विवाह का वह रूप है जिसमें पति की मृत्यु के पश्चात् लड़की का विवाह उसके पति के भाई अथवा परिवार के अन्य सदस्य के साथ करा दिया जाता है ताकि लड़की को

लगातार पारिवारिक सहारा मिलता रहे और उक्त लड़की को संतान होने की स्थिति में संपत्ति का बंटवारा भी ना हो। मगर नियोग के समानांतर भी परंपरा है कि लड़की के साथ उसके पति के अलावा पति के भाई भी समान व वैधानिक रूप से यौन संबंध रखने का अधिकार रखते हैं। जिसके उदाहरण आज भी उपलब्ध हैं। मगर स्वीकृति प्राप्त करने के बजाय, संस्कृतिकरण के इस दौर में ये सर्वज्ञात गुप्त की संज्ञा में हैं। अर्थात, अधिकांश लोग इस परम्परा को जानते भी हैं और कुछ इसके उदाहरण भी हैं, मगर इसपर कोई बात करना नहीं चाहता। विवाह के इसी रूप की पृष्ठभूमि में 'पारो' का आयात होता है।

स्थानीय बुद्धिजीवियों के विचार हैं ''पारो लाना एक मजबूरी है, एक जरूरत, एक सामाजिक हेय दृष्टि का कोपभाजन बनने का प्रथम चरण''। वो कहते हैं ''ये काम मुख्यधारा के मेवों का नहीं बल्कि पिछड़े व बहिष्कृत लोग ही ऐसा करते हैं।'' 'पारो' एक संभोग यंत्र की भूमिका तो अवश्य निभाती हैं, परंतु एक वैकल्पिक साधन होने से इंकार करना भी अतिशयोक्ति होगी। तथापि, ये भी सत्य है कि मेवों की स्थानीय मान्यताओं और परिस्थितियों का खामियाजा पूरी तरह दूसरे क्षेत्रों की गरीब और निरीह महिलायें भुगत रही हैं।

इसके कारणों के सामाजिक अध्ययन कहीं और इशारा करते हैं। आइये, विवाह धन (Marriage money) पर आधारित एक उदाहरण देखें।

समाज विज्ञानी मोनिका दास गुप्ता के विवाह धन सम्बंधी सिद्धांत के अनुसार :

सामान्यतः युवाओं के विवाह के प्रचलन (ज्ञात रहे कि जहां M/F हो) में विवाह धन (Marriage money) की अवधारणा का निम्नांकित मानदंड है।

समग्र परिपेक्ष्य में–

जहॉ कि एक लड़के का जन्म 1980 में हुआ हों।

पुरुष		महिला
Cohort 1980	-----------------------	1982, 83, 84,85,86,87,88,89,90
(नहीं बन्धुआ)		(बन्धुआ उम्र 18-25)

अर्थात

1980 की आयु–समूह का एक लड़का सामान्यतः 9 लड़कियों का विकल्प प्राप्त करता है। लड़की पर शादी की उम्र का कठोर बंधन होता है, जबकि युवक ऐसे किसी बंधन से सामान्यतः मुक्त होता है। जिसके कारण विवाह धन का प्रवाह वर पक्ष की ओर होता है।

क्षेत्रीय परिपेक्ष्य में–

जहां कि एक लड़के का जन्म 1980 में हुआ हो।

(यहां उल्लेखनीय है कि लड़कों का विवाह समान्यतः 15 से 22 में हो जाना आवश्यक है।)

पुरुष	महिला
Cohort 1980 --------------------------------------	1980, 81, 82, 83, 84, 85
(बन्धुआ उम्र 15-21)	(बन्धुआ उम्र 14-18)

अर्थात

1980 के आयु–समूह का एक लड़का 6 लड़कियों का विकल्प प्राप्त करता है। मगर लड़के पर उम्र का बंधन भी लगा होता है। फिर भी वह विवाह धन प्राप्त करता है, क्योंकि लड़की भी एक निश्चित विवाह आयु–सीमा से बंधी होती है। उसे भी तुरंत ही उस आयु–वर्ग में विवाह करना होगा। किसी युवक ने अगर बगैर विवाह के ही 30 बसंत देख लिये तो अब उसे लड़की पाने के लिए मूल्य चुकाना होगा।

वो लड़की 'पारो' या किसी कारण से कुंवारी रह गई या तलाकशुदा 'मेव' भी हो सकती है। फिर अगर लड़की 'मेव' है, तो उसके लिये समाज का सहारा तो है। मगर सिर्फ इतना कि उसे जान से मारा ना जाये पर अगर वो 'पारो' है तो फिर समाज भी समाज नहीं, तमाशबीन भीड़ मात्र होता है।

'पारो' की समाजिक स्वीकार्यता और आर्थिक भागीदारी

सर्वेक्षण, जिस में कुल 372 प्राथमिक श्रोत (Primary respondent) शामिल किये गये और इनसे सीधे साक्षात्कार के आधार पर निम्न आंकड़े अपनी कहानी बयान करते हैं। यद्यपि क्षेत्र मे हाल के वर्षों में आयात की गई महिलाओं से संपर्क में बहुत अधिक सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। तथापि, एक संतोषजनक संख्या जो कुल प्रस्तुत संख्या का 29 प्रतिशत है, प्राप्त करने में हम सफल रहे। यहां उल्लेखनीय है कि हाल के वर्षों में आयात की गई बहुओं से मिलने की कठिन प्रक्रिया का कारण पर्दा भी है और उनके रहने की अनिश्चितता भी। एक सरपंच सरफुद्दीन कहते हैं कि ''आपको मिलवा तो दें, मगर आप रजिस्टर्ड कर लेंगे और फिर वो भाग गई या लापता हो गई तो बेचारा लाने वाला फंसेगा। दो टूक कहें तो बहुत कम 'पारो' ही अपना जीवन यहां गुजार पाती हैं। वो कहां जाती हैं, ये जानने के लिये और अधिक कार्य करने की आवश्यकता है।

आइये देखें कि लक्षित प्राथमिक श्रोतों ने इस क्षेत्र में कितने वर्ष अपने जीवन के गुजारे (आंकड़े, मेवात के तीन प्रखण्डों क्रमशः नूँह, फिरोजपुर झिरखा एवं नगीना के 25–25 गांवों से ली गई 372 पारो महिलाओं के साक्षात्कार एवं अध्ययन पर आधारित हैं)

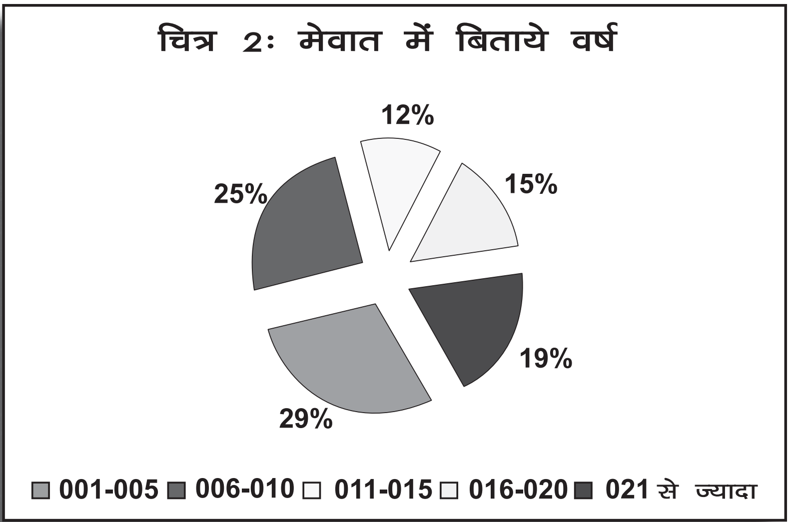

यहां प्रस्तुत ग्रॉफ के अनुसार 1 वर्ष से 5 वर्ष तक अपना समय गुजारने वाली महिलायें 29 प्रतिशत, 6 से 10 वर्ष गुजारने वाली 25 प्रतिशत महिलायें, 11 से 15 वर्ष गुजारने वाली 12 प्रतिशत, 16 से 20 वर्ष वाली 15 प्रतिशत व 21 से अधिक वर्ष गुजारने वाली महिलायें 19 प्रतिशत हैं।

यहां उल्लेखनीय है कि क्षेत्र में सबसे कम समय गुजारने वाली महिला 3 महीने और सबसे अधिक वर्ष गुजारने वाली महिला ने 38 वर्ष गुजारे हैं। अर्थात, कुल पारो महिलाओं का 71 प्रतिशत ने पांच वर्ष से अधिक समय यहां गुजारा है, जिनमें अधिकांशतः किसी भी प्रकार के सरकारी ऑकड़ों में दर्ज नहीं हैं।

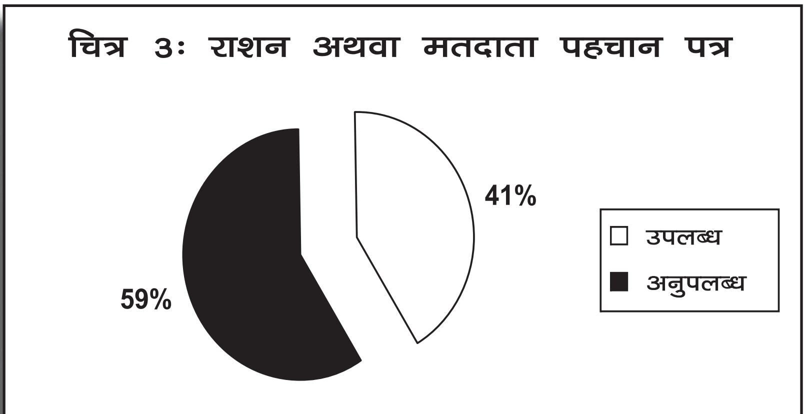

उपर्युक्त चार्ट पारो महिलाओं के सरकारी आंकड़ों में दर्ज होने की कहानी कहता है। जहां कि कुल 372 प्राथमिक स्रोत में 59 प्रतिशत के नाम ना तो राशन–कार्ड में दर्ज हैं ना ही मतदाता–सूची में वहीं 41 प्रतिशत महिलाओं के नाम मतदाता–सूची अथवा राशन–कार्ड में दर्ज हैं। स्वाभाविक है कि 59 प्रतिशत महिलाओं को जनगणनाओं में भी शामिल नहीं किया जा सका होगा। चुंकि परिवार के वो सदस्य जो वास्तव में परिवार के सदस्य हैं और उनका वहां रहना तय हैं, वही उस परिवार के राशन–कार्ड अथवा मतदाता–सूची में दर्ज हैं।

स्पष्ट हैं कि पारो महिलाओं के 59 प्रतिशत को परिवार अपने सदस्य के तौर पर स्वीकार नहीं करता। इसके पीछे साफ मानसिकता है कि ''खरीदकर लाई गई ये पारो महिलायें, टिकेंगी नहीं भाग जायेंगीं।'' इनका नाम मतदाता सूची अथवा राशनकार्ड में डालना अपने लिए कानूनी फंदा तैयार करना है। फिर सरकारी आंकड़ों में दर्ज किये जाने के कारण इन्हें कानूनी वैधता भी प्राप्त हो सकती है।

प्रशासनिक अमला जो हमेशा ''ऐसा नहीं होता'' या फिर ''शिकायत नहीं आती'' का औपचारिक अलाप करता है, को ये स्थिति चौंका सकती है कि उनके क्षेत्र में निवास करने वाली आबादी के विषय में वो अनभिज्ञ हैं।

सामाजिक अस्वीकृति के बावजूद पारो महिलाओं का मेवात में वर्षों से अस्तिव रहा है। कई–कई वर्ष बिता देने के बावजूद इन्हें उनके मौलिक–अधिकारों से वंचित रखा जाना और सरकारी ऑकड़ों में जगह नहीं दिया जाना 'पारो' लाने वाले परिवारों की नीयत पर प्रश्नचिन्ह लगाता है।

अधिकांश पारो महिलाएं आज भी 'मेवात' में अधीनस्थ यौन–दासीयां मात्र का जीवन व्यतीत कर रही हैं और स्वामीयों द्वारा (स्थानीय सामाजिक कार्यकर्ता गौशिया के शब्दों में) भैंसों की तरह बेची जाती हैं। ये लड़कियां बिकती हैं। बार–बार बिकती हैं। तब–तक, जब–तक की वो व्यवसायिक यौन कर्म ना अपना लें या फिर भीख न मांगने लगें या भाग जायें। मगर हम ये नहीं पूछ सकते थे कि ''आप को कितनी बार बेचा गया'' सो हमने पूछा ''आपका कितनी बार विवाह हुआ है।''

चित्र 4ः पारो महिलाओं के विवाहों की संख्या

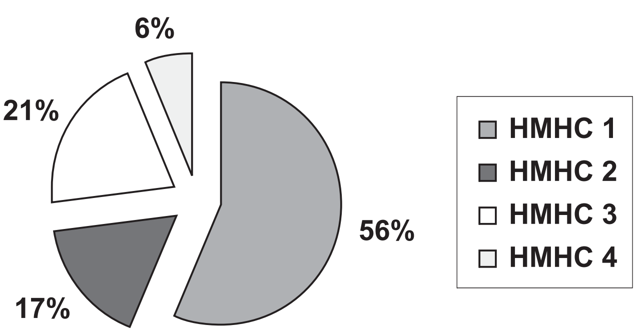

उपर्युक्त चार्ट में बिक्री ना किये जाने का कोई उल्लेख नहीं किया गया है। क्योंकि शत–प्रतिशत लड़कियों के आयात में पैसे का लेन–देन अनिवार्य रूप से हुआ है। यहां जो संकेत HMHC उपयोग किया गया है, उसका आशय लड़की के कितने हाथों में बदले जाने से है। वृत स्पष्ट करता है कि कम से कम एक बार दूसरे हांथ तक पहुंचने वाली कुल संख्या का 17 प्रतिशत हैं। यानि की अध्ययन में शामिल ड्राइवरों अथवा दलालों, (जिनमें स्वयं 'पारो' भी शामिल हैं) द्वारा लाई गई 17 प्रतिशत लड़कियां अनिवार्य रूप से एक बार दूसरे के पास पहुंचाई (बेची गई, पढ़े) गई। वहीं 56 प्रतिशत लड़कियों को उनके दूसरे मालिक ने भी दूसरों को दे दिया। अर्थात, कुल संख्या की 56 प्रतिशत लड़कियां दो बार बेची गईं। वहीं 21 प्रतिशत (77) लड़कियों को तीन बार और चार या उससे अधिक बार बेची गई लड़कियों का प्रतिशत कुल संख्या का 6 प्रतिशत है।

आज जबकि इस क्षेत्र की परम्परा का अंग 'करेवा'[2] (एक ही महिला से कई पुरुषों का यौन संबंध) संस्कृतिकरण के कारण विलुप्त हो रही है, वहीं एक दूसरे रूप में प्रकट होकर नई तरह से समस्या बन रही है। समाज के इस संस्कृतिकरण ने 'करेवा' परंपरा पर जो अंकुश लगाया, उस अंकुश के विरूद्ध एक विकल्प के रूप में 'पारो' या पारो महिलायें समाज के समक्ष चुनौती बनी है।

विषम क्षेत्रों से आयात की गई इन लड़कियों के लिये जो प्रथम संबोधन आता है, वो है 'पारो', जो स्वयं ही उनके लिये परिवार की स्थिति को इंगित कर देता है।

---

2. Polygamy (M.L. Darling writing in 1925)

मेव समाज वास्तव में इन महिलाओं को समाज व जाति के लिये चुनौती ही मानता है। इसलिए इन्हें सम्मान या अधिकार देने के बजाय इनका बहिष्कार करता है। शोध के दौरान उभर कर आये तथ्य स्पष्ट करते हैं कि 'पारो' लाने वाले वाले परिवारों को समाज निम्न (समग्र अर्थो में) और बदमाश प्रवृति का मानता है अर्थात उसे सामाजिक प्रतिष्ठा का पात्र मानने से इंकार कर देता है।

शब्द 'पारो' अपने आप में न केवल गैर और पराया अहसास कराने वाला शब्द है, अपितु ये सामाजिक हैसियत को भी तय करता है। जहां कि औरतों (ब्याहता महिलायें) और 'पारो' औरतों की पारिवारिक पहचान को अलग कर दिया जाता है। 'पारो' के लिये समाज एक विशेष दायरे का निर्माण कर देता है जिसके भीतर इनकी समाजिक स्थिति मृतप्रायः हो जाती है। एक तरफ जहां ये विजातीय पहचान इन पारो महिलाओं को पारिवारिक पहचान और वैयक्तिक स्थितियों से अलग कर देता है, वहीं ब्याहता महिलाओं की स्थिति चाहे जितनी भी दयनीय हो, मगर वास्तव में उनकी पारिवारिक स्थिति को चुनौती नहीं दिया जाता। ये महिलायें पारो महिलाओं से सभी मामलों में अधिक अधिकार सम्पन्न होती हैं। सामाजिक स्थितियों के परिपेक्ष्य में देखें तो अगर परिवार ने पारो महिलाओं को अधिकार सम्पन्न स्थिति और मान्यता दे भी दी तो समाज उसे अस्वीकृत करता है और उसकी स्थिति को मान्यता नहीं देता। दरअसल सामाजिक–सांस्कृतिक दृष्टि इस पूरी प्रक्रिया को घिनौना करार देती है।

पारो महिलाओं को कुछ दिनों तक रखकर बेच देना उसकी इसी मानसिकता का परिचायक है। जो कि पारो महिलाओं को अपने साथ कुछ दिन रखकर बेच देने का कारण बनता है।

चित्र 5ः पारो के पति के विवाहों की संख्या

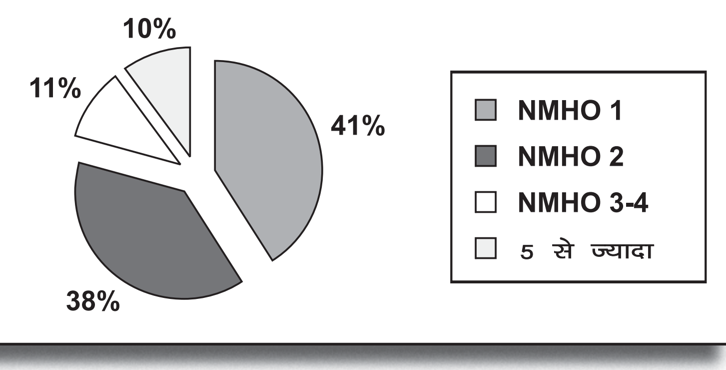

उपर्युक्त वृत स्पष्ट करता है कि 'पारो' के साथ अपने जीवन का प्रथम विवाह करने वाले कुल संख्या का 11 प्रतिशत हैं, वहीं दूसरा विवाह करने वाले 38 प्रतिशत, तीसरा अथवा चौथा विवाह करने वाले 41 प्रतिशत और 5 वां या उससे अधिक संख्या का "विवाह" करने वाले 10 प्रतिशत व्यक्ति हैं। जहां उल्लेखनीय है कि अध्ययन के दायरे मे एक व्यक्ति के विवाह की अधिकतम संख्या 8 है। यहां ज्ञात रहे कि सारे विवाह एक ही समय नहीं होते अर्थात एक 'पारो' के भाग जाने, मर जाने या दूसरों से विवाह करा देने के पश्चात ही किये जाते है। 89 प्रतिशत मामलों में 'पारो' दूसरी या तीसरी या अन्य आगे की संख्या वाली पत्नी होती है। बाहर से लड़कियां लाने के तर्क चाहे जो भी हों मगर इतना तो स्पष्ट है कि ये लड़कियां युवकों के प्रथम विवाह की पत्नी नहीं हैं।

पारो महिलायें व्यापक 'मेव' समाज में किसी खतरे से कम नहीं देखी जाती हैं। बीवां निवासी फिरदौस और फिरोजपुर नमक निवासी जुबैर की उम्र और विचारों में आसमान–जमीन का अंतर है। जुबैर किसान है। उनकी जुबान अक्सर फिसल जाती हैं और कुछ गालियां आ जाती हैं जिसे वो सुधारतें हैं। उन्हें मेरी बातें भी अक्सर ही समझ नहीं आती और उनकी बातों में मुझे मेरे साथी कासिम मध्यस्थता करते हैं। मगर उन दोनों में एक समानता हैं, वो ये कि दोनों ही बिहारीयों, आसामियों और बंगालियों को गालियां देते हैं। दोनों की दिक्कत 'पारो' का आयात है। वो इस पर रोक लगाना चाहते हैं। इस विचार कि पृष्ठभूमि में है, उनके दामादों द्वारा 'पारो' लाने की धमकी देकर उनकी बेटीयों को निकाल देना। दोनों ने मुकदमा किया है और केस जारी है। मगर जुबैर पूछते हैं कि ''तलाक तो मिल जायेगा, मगर ये सब आखिर कब तक चलेगा, वो तो सचमुच 'पारो' ले आयेगा, एक बेटा विकलांग है, मैं बुड्ढ़ा आदमी, बेटी के तीन–तीन बच्चों को पालेगा कौन ?

मगर फिरदौस उत्साहित है, कहती है ''तलाक मिल गया तो बेटी की दूसरी शादी कर देगें।'' मगर उसे अफसोस है कि ''उसका दामाद चाहे जेल भी चला जाये लेकिन पारो ले आयेगा और उसके खिलाफ सामाजिक दबाव किसी काम नहीं आयेगा।'' वो इसके लिये पारो लड़कियों को ही जिम्मेदार मानती हैं। ऐसे कई लोग हैं जो पारो लड़कियों के आसानी से मिलने को परिवार के टुटने और समाज के युवकों के बिगड़ने का कारण मानते हैं। उनके अनुसार शहर की वेश्यावृति ने उनकी सांस्कृतिक परंपराओं के विरुद्ध उतनी अधिक समस्यायें पैदा नहीं की, जितना की इन पारो महिलाओं के आयात ने।

दरअसल खेत में महिलाओं का काम करना मर्दों के काम के तौर पर मान्यता ही नहीं रखता, बल्कि इसे रचनाकर्म की तरह मान्यता प्राप्त है। ठीक उसी तरह जैसे कि संतान को जन्म देना।

पारो महिलायें सदैव ही स्थानीय महिलाओं की व्यक्तिगत व सामाजिक कुंठाओं का शिकार होती हैं। भले ही 'पारो' महिलाओं के कारण स्थानीय महिलाओं की सामाजिक हैसियत बढ़ी और कृषि व मवेशी के काम से एक हद तक मुक्ति प्राप्त हुई। देखने में आता है कि जिस संयुक्त परिवार में ये पारो महिलायें लाई जाती हैं, उन परिवारों की अन्य महिलायें अपने कार्यों से मुक्त होती हैं। ऐसा नहीं कि ये उस परिवार के पुरुष के कारण हैं। बल्कि, ये सामाजिक दबाव होता है कि परिवार में मोल की लड़की रहते हुए भी स्थानीय महिलाओं से काम लिया जा रहा है। ऐसे में पारो लड़कियां घर और कृषि के अधिकांश काम करने को मजबूर होती हैं। जब ये किसी भूमिहीन अथवा विपन्न व्यक्ति के परिवार में होती हैं तो घरेलू कार्य के अलावा पैसा कमाने के लिये भी आवश्यक श्रम करना इनकी नियती होती है। मगर समाज के भीतर रहकर सदैव ही उसके तानों को सुनना और विरोध के एक वाक्य ना बोल पाने की मजबूरी इनको किस स्तर का मानसिक सदमा पहुंचाती हैं, कह पाना कठिन है। इस तरह के जीवन के कारण ही ये महिलायें अक्सर भगोड़ी होने का आरोप भी झेलती हैं।

भगोड़ी होने का आरोप

औरतों से अपेक्षा की जाती है। वो चुप रहें, जो कहा या किया जाये उसे सुनें या सहें, मगर कुछ ना कहें चूंकि अच्छे खानदान की अच्छी औरतों की आवाज भी घर की चारदीवारी से बाहर आना बुरी बात है। उनका चीखना–चिल्लाना या विरोध करना सामाजिक तौर पर अच्छा नहीं माना जाता। ठीक ऐसी ही बात पारो महिलाओं पर लागू होती है और उनसे अपेक्षा की जाती है कि चाहे उसका मालिक उनसे जैसा व्यवहार करे मगर उन्हें विरोध नहीं करना है। एफ. जी. डी. के माध्यम से ये बात बड़े मुखर तौर पर सामने आती है कि पारो महिलाओं पर उनके मालिक विश्वास नहीं करते और उन्हें पारो के भाग जाने का डर लगा रहता है। इसी डर के कारण पारो महिलाओं को घर की कीमती चीजों से हमेशा दूर रखा जाता है। 'परिवार' और 'समाज' में इनका परिचय सदस्य के बतौर नहीं कराया जाता। 'पारो' के स्वामी इस बात का विशेष ख्याल रखते हैं कि इन्हें मायके के परिवार से भरसक काट कर रखा जाये। यहां तक की पत्राचार का माध्यम भी समाप्त कर दिया जाता है ताकि किसी भी प्रकार बाहरी दुनिया से इनका संपर्क ना हो सके। इन स्थितियों से होकर गुजरने वाली और बाद के समय में परिवार व समाज में अपनी पहचान स्थापित कर लेने में सफल हुई पारो महिलाएं स्वीकारती हैं कि शुरूआत में बेहद मुश्किलों का दौर होता है। कई–कई बार तो पता ही नहीं चल पाता कि असली पति है कौन[3] ? ऐसे में वो लड़कियां जो स्थितियों से समझौता नहीं कर पाती भाग जाती हैं।

भगोड़ी होने के इस आरोप ने पारो महिलाओं को क्षेत्रीय आधार पर बांट दिया है। जैसे अगर आप बिहार या बंगाल से लाई गई पारो से बात करते हैं तो वो बतायेगीं कि असमी लडकियां भाग जाती हैं। मगर आप के सामने अगर असमी लड़की है तो वो बिहार, बंगाल की लड़कियों पर भगोड़ी होने का आरोप मढ़ देगी। पारो महिलाओं के साथ हुयी एफ. जी. डी. में भागने के सवाल पर ये बात साफ उभर कर आई कि तमाम जुल्मों और विषम परिस्थितियों के बावजूद भागने को समान रूप से निंदनीय माना जाता है। अक्सर ही इनमें स्वयं को बेहतर और अधिक विश्वसनीय बताने की होड़ लगी रहती है। स्वभाविक है कि इनकी स्थितियों ने इन्हे ऐसा करने पर मजबूर किया है।

पंचायत प्रतिनिधीयों के साथ हुयी एफ. जी. डी. में बड़ी स्पष्टता से इस बात को रखा गया कि इन पारो महिलाओं के भागने के कारणों को देखना चाहिए और सामाजिक पहल करनी चाहिये। वो मानते हैं कि समाज के बदमाश प्रवृति और आर्थिक रूप से कमजोर लोग लड़कियां लाते हैं, मगर चुंकि उन लड़कियों को दलाल बड़े–बड़े सपने दिखाकर लाता है। इसलिये ये लड़कियां सच का सामना नहीं कर पाती और भाग जाती हैं। कई लड़कियां तो आस–पास के किसी लड़के के साथ ही निकलती हैं तो कुछ बिना किसी को कुछ बताये बहुत दूर अनजान रास्ते पर। पंचायत प्रतिनिधी मानते हैं कि जब ये लड़कियां अपनी शिकायत लेकर उनके पास आती हैं तो वो उस मामले पर ध्यान

---

3. शाहमीरबास की एक बुजुर्ग पारों महिला जुबैदा के अनुसार जिन्होनें करेवा के विशय में बेहतर जानकारीयॉ दी! ऐसी धटना का उल्लेख जाटों पर आधारित एक लेख में प्रेम चौधरी ने भी किया है!

नहीं दे पाते। चुंकि उन लड़कियों कि खातिर जिनका कोई 'ठिकाना' नहीं, स्थानीय लोगों से लड़ाई नहीं ले सकते।

मगर पारो महिलायें बताती हैं कि ''भागना एक मजबूरी होती है और वो तब भागती हैं जब उन्हें बेचने की बात की जा रही हो या फिर मार–पीट हद से ज्यादा बढ़ जाये''। आखिर कोई भी बेसहारा लड़की अपने नाम के ही सही सहारे को कैसे छोड़ सकती है ?

स्थानीय आर्थिकी व घरेलू खर्च व्यवस्था में 'पारो'

नरक से भी बदतर स्थितियों में अपना जीवन व्यतीत करने वाली यहॉ ब्याह कर लाई जाने वाली ये लड़कियां, स्थानीय घरों की आर्थिक उन्नति में उल्लेखनीय और अहम भूमिका अदा करती हैं। अप्रत्यक्ष श्रम (घरेलू कार्य, जिसे हम श्रम श्रेणी देने से जाने क्यों हिचकिचाते हैं) खेती व पशुपालन के अलावा अन्य आय के लिये किये जाने वाले कार्यों में इनका बड़ा योगदान है। बल्कि, इस क्षेत्र में होने वाली महिलाओं की बाह्य श्रम शक्ति का शत–प्रतिशत इन महिलाओं का है। विभिन्न मौसमी फल, सब्जीयों और प्रसाधन आदि की बिक्री में इनका बड़ा महत्वपूर्ण योगदान है।

अरसा हुआ कि हरियाणा 'देश' के लिये हरित व दुग्ध क्रांति में अग्रणी बना,

अमीना इसकी तुलना करते हुए बताती हैं, ''मर्द जितना काम बच्चा पैदा करने में करते हैं, उतना ही काम खेत में। 'बोवाई' और 'मालिकाना हक' का मतलब ये कि जैसे महिलायें गर्भ में और बड़े होने तक बच्चे की देखभाल करती हैं और फिर समाज उन्हें उनके पिताओं का नाम देता है। ठीक उसी तरह फसल के खेत से अनाज के रूप में घर में आने तक स्त्रियां उसकी देखभाल करती हैं। मगर वो जैसे ही अनाज के रूप में घर आता है मालिकाना हक घर के प्रधान पुरुष का होता है।''

सुपरिणाम निकले और अब दुष्प्रभावों की बातें भी हो रही हैं। वहीं मेवात जिला इन क्रांतियों के प्रभाव से अछुता रहा, अब भी है। शायद इसलिए इस क्षेत्र की अर्थव्यवस्था यातायात प्रबंधन (ट्रक आदि के संचालन सम्बंधी) व्यवसाय पर टिकी है। पशुपालन व कृषि जैसे पारंपरिक व्यवसाय पारंपरिक रूप से अपने आप को घसीट रहे हैं। जिनका जुआठ औरतों के कंधे पर हैं। अधिकांश युवा–मर्द ज्यादा समय ट्रक पर होते हैं, और जो यहां हैं वो सिर्फ दूकानों में काम करते हैं। यानि खुद का व्यवसाय, रही बात खेती या पशुपालन की तो ये अनिवार्य रूप से औरतों के जिम्मे ही है। दरअसल खेत में काम करना मर्दों के काम के तौर पर मान्यता ही नहीं रखता, बल्कि इसे रचनाकर्म की तरह मान्यता प्राप्त है। ठीक उसी तरह जैसे कि संतान जन्म देना। संतान को जन्म देने का उदाहरण अपनी तमाम प्रक्रिया से महिलाओं के खेती, पशुपालन के कार्य से समानता रखता है।

अमीना इसकी तुलना करते हुए बताती हैं ''मर्द जितना काम बच्चा पैदा करने में करते हैं, उतना ही काम खेत में। 'बोआई' और 'मालिकाना हक' का मतलब ये कि जैसे महिलायें गर्भ में और बड़े होने तक बच्चे की देखभाल करती हैं और फिर समाज उन्हें उनके पिताओं का नाम देता है। ठीक उसी तरह फसल के खेत से अनाज के रूप में घर में आने तक स्त्रीयां उसकी देखभाल करती हैं। मगर वो जैसे ही अनाज के रूप में घर आता है मालिकाना हक घर के प्रधान पुरुष का होता है। और इसे उस पुरुष के श्रम का प्रतिफल माना जाता है।''

बींवा निवासी एक 'पारो' बताती हैं कि ''असल में पारो लाने का तो कारण ही खेती और मवेशी का काम है।'' वो बताती हैं कि 'वो जिस परिवार की सदस्य हैं उसकी आय का मूल स्रोत खेती और पशु पालन है। जिसका सारा काम वो स्वयं और उनकी देवरानी करती हैं। इन कामों में खेत से नेयार और जलावन लाना भी शामिल है। ऐसा नहीं है कि स्थानीय महिलाओं की स्थिति इनसे अलग है। वो भी कुछ ऐसी ही जिन्दगी जी रही हैं।'

मगर घरेलू महिलायें जब पैसे भी मांगती हैं तो नहीं मिलता। घर के तमाम खर्चों और आवश्यकताओं को तय करने का अधिकार पुरुषों के पास है। यहां तक की भोजन में बनने वाली सब्जीयां और तमाम चीजें पुरुष ही तय करते हैं। वैसे तो क्षेत्र के प्रचलित भोजन में रोटी और प्याज ही है, जिसके साथ मर्दों को अनिवार्य रूप से दूध परोसा जाता है। मगर ये बात औरतों के साथ लागू नहीं होती है। शाम की चाय मगरिब (शाम की नमाज) के बाद और ऐशा (रात की नमाज) के बीच होती है। जिसमें परिवार के तमाम पुरुष सदस्यों से शामिल होने की अपेक्षा की जाती है। मगर औरतों से अपेक्षा की जाती है कि वो इस बीच रात का भोजन तैयार करें।

मांस क्षेत्र का प्रिय भोजन है मगर इसका उपयोग सीमित है। चावल की अवधारणा तो है ही नहीं।

ऐसे में विषम क्षेत्रों से लाई जाने वाली लड़कियां परेशानी में पड़ जाती हैं। उन्हें यहां के भोजन से ही संतुष्ट होना होता है। बुखाराका की एक 'पारो' आईशा ने एक कहावत सुनाई थी।

नार सुलखनी कुटुम खिलावे।
खुदे तसले की खुरचन खावे।।

वे बताती हैं कि ''शुरू में उन्हें यहां का खाना बिल्कुल पसन्द नहीं आता था। यहां की रोटियां बड़ी मोटी होती हैं, चूंकि रोज चक्की पर गेहूं पीसकर रोटी बनती है। पतली रोटी बनाने के लिये मशीन में पीसा हुआ आटा चाहिये। मगर उसमें तो पैसा लगता है, इसलिये ये काम भी घर की औरतें ही करती हैं।

वे बताती हैं कि ''बंगाली लड़कियों को तो भात के अलावा कुछ और अच्छा नहीं लगता। मगर यहां बेचारी मन मसोस कर रहती हैं। वो घर में अपनी मर्जी से खाना नहीं बना सकती।''

यहां खाना बनाने के लिये जंगल से लकड़ी लाने का वर्षों पुराना रिवाज है और ये आज तक निर्बाध रूप से जारी है। यद्यपि कुछ संपन्न घरों में गैस की व्यवस्था भी है और दहेजो में गैस मांगने और देने का सिलसिला भी जोरों पर है। मगर इसका कतई ये मतलब नहीं कि इन घरों की महिलाएं जलावन के लिये जंगल नहीं जाती हैं, जाती हैं, और खाना भी उसी जलावन से बनता है। तेर के जेकम बताते हैं कि 'औरतों को हाथ में रखने के लिये ये सब तिकड़म करनी पड़ती है। अगर आज गैस दे दो तो कल कुछ और मांगेगी और मांग बढ़ती ही जायेगी।'

अधिकांश परिवारों में वाहन परिचालक हैं, जो कोयला, लकड़ी आदि के परिवहन में कार्य करते हैं। मगर उनके घर का चूल्हा भी औरतों के द्वारा जंगलों से लाये गये जलावनों पर निर्भर होता है। इसका मतलब ये नहीं कि ये अपने वाहन पर लादे जाने वाले माल को हाथ नहीं लगाते। लगाते हैं और खूब लगाते हैं!

कहते हैं कि इस तरह का माल अगर गाड़ी से उतारना हुआ तो सोहना में उतारते हैं। ताकि वहां से नकद पैसा मिल जाये। ये पूछने पर कि 'घर जलावन के लिये क्यूँ नहीं लाते' कहते हैं कि 'बेरबानी काम नहीं करेगी तो उनका ध्यान इधर उधर जायेगा। बदनामी हो सकती है चुंकि उनके मर्द हमेशा साथ तो नहीं होते। बाहर गांव (क्षेत्र के बाहर) की लड़की यहां के कायदे से नहीं चलती। वो अक्सर किसी दूसरे मर्द से फंस जाती हैं और कई बार तो भाग भी जाती हैं।'

इन बातों का दूसरा पक्ष भी है 'पारो' मनुष्य कहां है, इनकी इज्जत कहां होती है? इनसे अच्छा कोठे की औरतें हैं। जिनकी अपनी मर्जी कभी तो चलती है। यहां तो 'पारो' दादी भी बन जाये तो पोते की उम्र वाले से बचकर रहती है। यहां के मर्दों की सारी दुनिया और दिमाग तो पेट से नीचे हैं। ये दिन भर काम करवाने का चाहे जो भी तर्क दें। 'पारो' साफ मानती हैं कि ''हम जिन्दा रहने के लिये काम करते हैं और मेवात के लोगों की मर्जी तक जिन्दा रहते हैं।''

इसमें कोई शक नहीं कि मेव महिलाओं की स्थिति भी परिवार में प्रभावी नहीं है।

''ये लोग (मेव) तो मजदूर से भी नमाज पढ़ने को कहते है। जमातें निकालते हैं। मगर, 'पारो' अगर नमाज पढ़े तो इनका काम रुक जायेगा। आप चाहे पुरा मेवात देख लें। 100 में से एकाध 'पारो' अगर नमाज पढ़ती नजर आये तो बहुत है''

मगर इस्लामी संस्कृतिकरण से प्रभावित इस जाति में मेव महिलाओं से जहां नमाज पढ़ने की अपेक्षा की जाती है, वहीं कोई 'पारो' शायद ही नमाज पढ़ती नजर आये। वो बड़े दावे से कहती हैं कि ''औरतों खासकर 'पारो' पर बदनीयत होने का इल्जाम लगाने वाले ये लोग खुद ही गंदे हैं और अपनी सोच को ही औरतों पर लाद देते हैं। सच तो ये है कि ये खुद कभी रिश्तों का भी ख्याल नहीं रखते।'' स्थितियों से असंतुष्ट आशिया कहतीं हैं कि ''यहां गीत गाना आदि सब कुछ गैर इस्लामी कह कर बन्द करवा दिया गया, मगर खुद डीजे पर नाचते हैं।'' वस्तुतः 'पारो' मेव पुरुषों की कुंठाओं के इलाज की एक तकनीक है।

20 साल पहले प0 बंगाल से आई गाँव तेर में निवास करने वाली यासमिना बताती है कि 'उनका विवाह गांव नंगली के एक युवक से किया गया था। जहां वो ससुराल समझ कर आई थीं। मगर वहां आकर सच्चाई पता चली। पहले तो उससे खेतों में जानवरों की तरह काम लिया गया। फिर रात को शौहर के साथ सोना, हद तो तब हो गई जब उसके दोस्तों ने जबरदस्ती की और फिर ये रोज का काम हो गया, रोज नये लोग, गाँव के या परिवार के अन्य, लोग उसे नोचने लगे। मेरे प्रश्न पर वो बताती है कि परिवार की या गाँव की महिलायें आखिर क्यों मेरा साथ दें, मुझे इसीलिए खरीदा गया था। वो बताती है कि ''चक्की से गेहूं पीसना अब लगभग बन्द हो गया है और अब सारे काम मिल में होते हैं। मगर हमारे घर में आज भी चक्की का ही उपयोग होता है।'' जेकम कहता है कि ''मुफ्त की रोटी तोड़ने के लिये नहीं खरीदा है, काम करो तब खाओ।''

वो अपनी दिनचर्या बताती है। सुबह जंगल से लकड़ी लेकर लौटती है, खाना बना, खाकर, फिर खेतों में काम करने के लिए निकल जाती हैं। छोटी सी खुरपी दिखा कर बताती है कि ''यही मेरा हल ट्रैक्टर सब है।'' मेरे पूछने पर कि जेकम पहले वाले पति से अच्छा है? कहती है 'ओहो! भाई बनकर सब भेद ले लेगा' आगे बताती है ''नहीं! अब मेरी उम्र ढल गई ना। मगर बेचारी बिहारन की हालत बड़ी खराब रहती है। बेचारी कई बार भागी, मगर हर बार पकड़ी जाती है और उसकी कुटाई होती है। उसकी भागने की आदत की वजह से ही वो 4 बार बिकी है।''

तकनीकों के इस्तेमाल और उपयोगिता पर बात करते हुये यासमिना कहती है कि 'पारो' को तमाम काम हाथों से करना पड़ता है, चाहे उनका काम इस वजह से नुकसान ही क्यों ना हो। आखिर ये लोग तो कट्टर मुसलमान हैं, हम भी मुसलमान हैं, फिर ये ऐसा क्यों करते हैं कि लगता है हमसे कोई बदला निकाल रहे हैं?''

बिहार से आई खानपुर में रहने वाली बीनू बताती है, ''घर पर खेत में काम नहीं करते थे। यहां सब करते हैं।'' वो बताती है कि ''उसे क्या क्या करना पड़ता है। जंगल से सिर पर लकड़ी लाना, खेतों से नेवार लाकर घर में जमा करना और भैसों की देख भाल।''लोग कहते हैं और उनकी मनोदशा भी स्पष्ट करती है कि वो विक्षिप्त हो गई हैं। दिल्ली से लाई गई 'मीनू' दिल्ली कैसे पहुंची कोई नहीं जानता। मगर स्थानीय

साथी बताते हैं कि उसे दिल्ली से नहीं राजस्थान के एक गांव से लाया गया है। वहां वो बिहार से शादी करके लाई गई थी। इसकी पुष्टि बीनू करती है

ये पारो महिलायें स्थानीय परिवारों ही नहीं अपितु आर्थिक संवर्धन में भी जबर्दस्त योगदान देती हैं। ये योगदान उनके अस्तित्व की सच्ची और प्रतिनिधिक छवि को उकेरती किसी पांडुलिपी जैसा है जिसके बगैर मेव समाज अपनी भाषा का उपयोग नहीं कर सकता।

अन्धार्मिकता और नस्लवाद में पिसती 'पारो'

किसी भी समाज के परिवर्तन का पहला निशाना औरतें ही होती हैं। विशेषकर संस्कृतिकरण का सीधा प्रभाव यहां महिलाओं पर ही पड़ा है और वो भी नकारात्मक।

मेव जाति के मुस्लिम संस्कृतिकरण का प्रभाव भी महिलाओं पर ही पड़ा। तमाम कायदे कानूनों की अपने ढंग से व्याख्या की गई और तमाम अधिकारों को मर्दों ने अपने हाथ में ले लिए ऐसा नहीं कि इससे पहले महिलाओं को कोई विशेष अधिकार प्राप्त थे। फिर भी धर्म को नया आधार बनाकर औरतों को तलाक देने और चार शादी जैसे मुद्दों को अपनाया तो गया। मगर शरीयत् के अहम अंग 'दोख्तरी' 'खुला' जैसे शब्दों से अंजान रहने की भरसक कोशिश की गई। 'मेवात' देश का शायद एकमात्र ऐसा क्षेत्र है जहॉ संपत्ति पर महिलाओं का कोई अधिकार नहीं और इसका भी अपना धार्मिक तर्क है।

तलाक के मुद्दे पर भी ये जाति दो कदम आगे ही है। तलाक की भी अजीबो गरीब शर्त यानी या तो लड़की देन मेहर की रकम माफ करके तलाक ले ले या फिर उसी के निकाह में अपने मायके में जीवन गुजारे। होने वाला बच्चा भी पुरुष ही रखता है। लिंग शर्त परिर्वतन का कारण हो सकती है, अर्थात अगर संतान बेटी है तो ममता का ख्याल करके लड़की को मिल सकती है। ये तो मेव लड़कियों की स्थिति है, अब एक नजर 'पारो' पर।

'पारो' जिसका आयात केवल भोग के लिये हुआ है। उसे संपत्ति में भागीदारी देने का सवाल ही नही उठता। रही बात उनके तलाक व अन्य गतिविधीयों की तो धर्म कुछ नहीं कहता और चुप रहता है। (ध्यान रहे मैं इस्लाम की नहीं इनके धर्म की बात कर रहा हूँ।)

विद्रोही जातीयां जो संस्कृतिकरण की राह पर चल पड़ी हों कि एक बड़ी समस्या होती है। वो है समस्त इतिहास पर अपना वर्चस्व साबित करने की कोशिश करना, अपने वर्तमान और इतिहास को सदैव ही बढ़ा चढ़ा कर पेश करना और तमाम तरीकों से अपने को सर्वोपरि दिखाना। ऐसे में बाहर से खरीदी गई लड़कियों की स्थिति का अनुमान लगाना ही काफी है।

'पारो' की संतान और 'मेव'

सर्वप्रथम तो ये जानना आवश्यक है, 'पारो' इस समाज में वंश चलाने के लिये नहीं लाई जाती। उनके आयात का कारण अन्य स्थानीय आवश्यकता हैं। मगर जो 'पारो' स्थायी रूप से बस जाती है और उनकी संताने भी जन्म लेती हैं, उनकी स्थिति भी कुछ बेहतर नहीं होती। संतान के जन्म में भी भेदभाव स्पष्ट होता है।

अधिसंख्यक 'पारो' जो बच्चा जन्म देती हैं। वो वास्तव में उनके पास नहीं रह पाता। 'पारो' की बिक्री के समय उनकी संतान खरीद-बिक्री मूल्य तय करने में अहम भूमिका निभाती है। अगर संतान पुत्र है तो विक्रेता उसे 'पारो' के साथ नहीं भेजेगा परंतु वो अगर पुत्री हुई तो क्रेता और विक्रेता एक दूसरे पर लादना चाहेंगे। दोनों ही स्थिति में 'पारो' के बिक्री मूल्य पर प्रभाव पड़ता है और अंततः 'पारो' स्वाभाविक रूप से अपनी संतान से अलग हो जाती है। अधिकांश मामलों में 'पारो' की पुत्रियां बड़े निर्मम तरीके से मार दी जाती हैं। जिनकी हत्या को बीमारी या दुर्घटना जैसा प्राकृतिक स्वरूप दे दिया जाता है।

अन्य 'पारो' जो अपना परिवार बसा पाने में सक्षम होती हैं और परिवार में पत्नी और माँ की भूमिका में आ जाती हैं। सामान्यतः तो उस परिवार का मुखिया दिवालिया होगा या विक्षिप्त या विकलांग। ऐसे में उक्त परिवार की सामाजिक स्थिति स्वयं ही मुख्यधारा से अलग होगी और उनकी संताने समाज से अलग-थलग होंगी।

एक 'पारों' हैं गौशिया

आज से करीब 35 वर्ष पूर्व हैदराबाद के खैरताबाद की वेंकटरमन कॉलोनी की एक चौदह वर्षीय लड़की गौशिया 'मेवात' (कहा गया दिल्ली) ब्याह कर आई थी। नूँह के फिरोजपूर नमक गाँव में रोजदार नामक एक मजदूर युवक उसका पति बना। वो बिकी तो नहीं मगर स्पष्ट मानती है कि उसके जेठ की उसपर नजर थी। मगर मियाॅ रोजदार के सहयोग से जब उसने जेठ का पुरजोर मुकाबला किया तो जेठ ने इसे बेचने का जोर लगाया और रोजदार को दूसरी लड़की लाने की बात कहने लगा। मगर रोजदार अपनी स्थितियों के कारण ये जानते थे कि उन्हे लड़की शायद ही मिले। इसलिये वो भी अपनी बेरबानी का खुला पक्ष लेने लगे। मगर संघर्ष तो अभी शुरू हुआ था और हर पल उसे लड़ना था। समय गुजरा और गौशिया 8 बच्चों की माँ बनी। अब उन्हे संघर्ष के दूसरे मोरचे पर जूझना था। बड़े बेटे को उसने पढ़ाया। आज वो शिक्षक हैं। लोग ताज्जुब करते हैं और मानते हैं कि सारी मेहनत अकेले गौशिया ने की। उसी बेटे के विवाह की बात जब आई तो समाज में नाक-मुँह सिकुड़ने लगे ''छीः! पारो के जने को अपनी बेटी कौन दे।'' एक सज्जन आगे आये। उनका विचार था, ''लड़का लायक है तो पारो वारो को के देखणा, जब चाहेगें मार के निकाल देंगे जहाँ सू आइ हे जावेगी।'' खैर विवाह हुआ। शादी के एक महीने बाद ही बेटा मेव हो गया, अब वो अलग रहना चाहता था। अंततः अलग हो गया। कल तक अन्य गालियों की चाशनी के साथ 'पारो' का सम्बोधन सास व ननदों से सुनने वाली 'गौशिया' अब बहू से भी सुनती हैं।

शायद ये घर–घर की कहानी का हिस्सा लगें। इनकी बेटीयों की स्थिति भी बहुत अधिक संतोषजनक नहीं मानी जा सकती। इनकी चार बेटियॉ हैं। तीन की शादी हो चुकी है। मगर 'पारो' होने का अहसास आज भी होता है। इनकी बच्चीयों को जब–जब समस्या आती है तो उसका मूल आधार वास्तव में इनका 'पारो' होना होता है। जबकी मैं दावे से कह सकता हूं कि ये महिला बहुत शक्तिशाली है और शायद 'मेवात' की एकलौती मुस्लिम सामाजिक महिला भी। आखिर इस महिला की बसकरी बलात्कार कांड, मालब का रूबीना बलात्कार कांड तथा नगीना प्रखण्ड के बी. डी. ओ. द्वारा जूबैदा बलात्कार कांड जैसे मामलों को उठाने व आरोपियों को जेल भिजवाने में अहम् भूमिका रही है।

बड़ी बेटी के विवाह ने गौशिया को तोड़ कर ही रख दिया। उसका पति उसे दोस्तों व अन्य लोगो के साथ यौन संबंध स्थापित करने पर जोर देता था और इंकार के साथ ही नंगा करके पिटाई करता। एक दिन तो तब हद हो गई जब उसके पति ने दूसरों के साथ मिल इनकी बेटी को निर्वस्त्र कर बेल्ट से मारते हुए पूरे गाँव में घुमाया। पंचायत बुलाई गई। मगर फिर वही हुआ जो होना था। जातीय पंचायत चुप रही। आखिर एक 'पारो' की बेटी के लिये कौन लड़े। फिर एक 'पारो' की वजह से किसी 'मेव' को सजा तो दी नहीं जा सकती। अंततः कोर्ट से केस लड़कर तलाक मिला और फिर शादी हुई। वर्तमान स्थिति संतोषजनक कही जा सकती है। अभी दो साल पहले गौशिया ने अपनी दो और बेटीयों की शादी की है मगर असंतुष्ट स्थितियों के कारण दोनों ही बेटीयां अभी मायके में हैं। दामाद कभी दहेज की बात करता है कभी कुछ और।

गौशिया कहती हैं, ''मैं तो इनके लिये डी. एम., एस. पी. से भी लड़ जाती हूँ फिर मेरे साथ ऐसा क्यों।

उपर्युक्त स्थिति एक सक्रिय सामाजिक महिला की है तो अन्य निरीह 'पारो' की क्या होगी, विचारणीय है।

'पारो' और आयात के समाजिक कारक

धारा 498 एः 'पारो' आयात के एक कारण के रूप में

जहां एक ओर धारा ४९८ए पारिवारिक कलह में पिसने वाली महिलाओं के लिये किसी रामबाण की तरह है, वहीं 'पारो' आयात के तमाम कारणों में से एक कारण भी है। स्थानीय अदालत में कार्यरत कर्मी का अनुमान है, इस धारा के अंतर्गत प्रतिदिन आने वाली नालिशों का औसत १० है। यहां उल्लेखनीय हैं कि 'मेवात' क्षेत्र के अधिकांश परिवार (९० प्रतिशत से भी ज्यादा कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी) पारिवारिक न्यायालयों का चक्कर काट्ते नजर आते हैं। मुकदमेबाजी का ये उत्कृष्ट नमूना शायद ही कहीं देखने को मिले। स्थानीय सामाजिक कार्यकर्ता एवं नूॅह की जिला अदालत के एक अधिवक्ता के जूनियर के बतौर कार्यरत 'विधि' के छात्र मोहम्मद असद बताते हैं कि 'पारो' के आयात की वजह स्थानीय संस्कृति और व्यापक संस्कृतिकरण का द्वंद भी है। उनके अनुसार स्थानीय निवासी अपनी बहुओं से चाहे जैसा व्यवहार करें। मगर अपनी बेटियों के साथ वैसा व्यवहार नहीं चाहते और अनुचित व्यवहार पर 'तलाक' तक हर संभव कोशिश करते हैं। तलाक की ये प्रक्रिया केवल रिश्तों की समाप्ति तक ही सीमित रहने के बजाय गुजारा भत्ता आदि की मांग करना, फिर दहेज की प्रताड़ना के आरोप तक जाती है।

सच चाहे जो भी हो, शायद ये तमाम मुकदमें जायज हों बल्कि मेरे विचार से ये सही ही होते हैं । जिसका जायज आधार क्षेत्र में व्याप्त लैंगिक असमानता है। 'पारो' आयात का यही एक बड़ा कारण बन जाता है। 'पारो' जिसके साथ भले ही दहेज का माल ना आता हो या लाने के लिये पैसा चुकाना पड़ता हो। मगर उसे बगैर उसकी इच्छा खेतीहर मजदूर, घरेलू कर्मिक अथवा परिवार की किसी भी स्थिति के अनुकूल स्थानापूर्ति करा लेने की आजादी होती है।

सलम्बा (नूॅह) निवासी कस्सु उपयुक्त तथ्यों की पुष्टि करते हैं। वो कहते हैं ''यहां शादी करना एक झंझट है। एक तो बीबी बार-बार मायके की धमकी देगी, हर बात पर नखरा, किसी दिन हाथ छूट गया तो कोहराम और अदालत का चक्कर। इसी वजह से उन्हें तीन तीन विवाह करना पड़ा और वो मानते हैं कि अगर इनमें से एक भी 'मेव' लड़की होती तो उनकी जिन्दगी कोर्ट का चक्कर काट्ते गुजरती।'' कस्सु के अनुसार 'पारो' लाने से तमाम तरह के फायदे हैं और नुकसान की गुंजाइश नाम मात्र की। वो भी तब जबकि लड़की को ज्यादा ही तंग किया जाये या फिर दलालों के चक्कर में पड़ जायें। मगर फिर भी उन्हें पुरा विश्वास है कि 'पारो' के लाने से उन्हें कानूनी पचड़ों से आजादी प्राप्त होती है।

संस्कृतिकरण और परंपराओं के इस दोराहे पर मेव युवकों का मेव लड़कियों से शादी करना बड़ा कठिन है। कारण कि दहेज लेने के बाद सामाजिक दबाव बन जाता है। जिसकी वजह से लोग अपनी पत्नियों को कुछ बोल नहीं पाते। इस वजह से युवक

बाहर से लड़कियां लाना पसन्द करते हैं। बाहर की लड़कियों से शादी करने के बाद उनके मायके या समाज का कोई दबाव काम नहीं करता। बहुत से लोग तो ऐसे ही ले आते है और जब दबाव पड़ता है तो छोड़ भी देते हैं। इसके लिये कोर्ट, पुलिस के झंझट से भी मुक्ति होती है। अधिकांश युवक मानते हैं कि इसमें कुछ गलत नहीं क्योंकि वहां वो भूख से मरें, इससे बेहतर है कि यहां आ जाती हैं। अगर कोई छोड़ भी दे तो कोई दूसरा तो मिल ही जाता है। यहां के युवक भी अपने तरीके से अपना जीवन जीते हैं। उनके विचारानुसार ''बाहर शादी करने वाले लोग तलाक नहीं देते। चूँकी ऐसा कुछ मामला ही नहीं बनता है बल्कि रोटी–पानी के लिए वो लड़कियां आराम से काम करती हैं।

साधारणतः जनसंचार माध्यमों में 'पारो' के आयात का कारण इस क्षेत्र में लड़कियों की कमी होना बताया जाता है। इसके लिये तर्क के बतौर वर्तमान में बिगड़े लिंगानुपात का हवाला दिया जाता है। मगर सच्चाई इसके विपरीत है।

फिरोजपुर झिरखा के बिवां गांव निवासी एक युवा दीनमोहम्मद बताते हैं कि ''वो भी 'पारो' लाए हैं और उन्हें कुल 9 हजार का खर्चा पड़ा है। 'पारो' लाने का कारण वो धारा 498ए को बताते हैं। वो कहतें हैं कि ''लड़की की कमी नहीं असली वजह तो यह है कि यहां कि लड़कियों से शादी करने पर थोड़ी–थोड़ी सी बात पर पत्नी मायके चली जाती है। और फिर माँ–बाप के बहकावे में दहेज का केस ठुक जाता है। इससे अच्छा तो 'पारो' लाना है। वो कुछ बोलती भी नहीं और जैसे रखो रहती है। ज्यादा से ज्यादा भागेगी। फिर या तो पकड़ी जायेगी या भाग भी जायें तो कोई हिसाब लेने वाला तो नहीं होगा।''

वास्तव में दीनमोहम्मद की बात को हल्के में नहीं लेना चाहिये। उसके इस विचार को शतप्रतिशत सही बोलना सिवाय अपवादों के अतिशयोक्ति नहीं होगी।

परिवार विघटन व दहेज प्रताडना के वैध–अवैध मामलों की स्थिति तो ये है कि शायद ही ऐसा कोई परिवार हो जो इस पचड़े से बाहर हो अर्थात दहेज के मामलों की बड़ी भारी संख्या नजर आती है। तलाक, गुजाराभत्ता और पुर्नविवाह के मामले ही दरअसल यहां के थानों में दर्ज होने वाले अभियोग हैं। इस मामले पर और अधिक कार्य करने की आवश्यकता है।

चूँकि यहां जो लड़की होती हैं। उनमें आधे से अधिक लड़कियां दो या उससे अधिक बार बेची गई हैं।

कृषि मजदूर

'पारो' लाना न केवल समाज के अय्याशों का शगल है बल्कि इसके अपने आर्थिक निहीतार्थ भी हैं। 'पारो' ना केवल विवाद का विषय है अपितु इसे खरीदकर लाने के अपने अलग–अलग कारण हैं। जिसमें एक बेहतर व बड़ा कारण है, कृषि–कार्य हेतु मुफ्त के मजदूरों का इंतजाम होना जिसके लिये क्षेत्र का औद्योगिकरण व रोजगार के क्षेत्रों में हुई बढ़ोत्तरी एक हद तक जिम्मेदार है। क्षेत्र के आस–पास हुए विकास और इस क्षेत्र के अछुते होने के कारण यहां से प्रथमतः तो पलायन हुआ, वहीं दूसरी तरफ भुमि का बेहतर उपयोग नहीं हो सका। विकास और औद्योगिकरण की इस बयार में फरीदाबाद और गुड़गाँव जैसी जगहों में जमीनों की कीमत बेतहाशा बढ़ी और वहां के छोटे–मॅझोले किसानों ने जमीन बेचकर दूसरे व्यवसायों में हाथ डाला। जहां नकद आमदनी थी। वहीं 'मेव' बहुल क्षेत्रों की जमीनों के दाम जस के तस रहे। जिससे स्थानीय युवकों में असंतोष उत्पन्न हुआ और वो नकद आमदनी के लिये बाहर जाने लगे। वैसे भी इनका कृषक इतिहास कोई खास पुराना भी नहीं जिससे इन्हें कृषक जाति कहा जाये। पूर्व में भी यहां की अधिसंख्यक जमीन खानजादों के हाथ थी (जो बाद के समय में पलायन कर गये या जमीन छोड़ गये) या फिर वक्फ[4] की। दोनों ही हालत में ये जमीनें 'मेवों' के हाथ लगी। वक्फ में जाने वाली जमीनों की वजह से भी ये उन्हें बेच नहीं सकते थे और इनका कोई विशेष लगाव भी इन जमीनों से नहीं रहा था। सो पलायन करना या नकद पैसा कमाना इनका पहला और अंतिम लक्ष्य था।

मगर जमीनें भले ही सस्ती हों या वक्फ की हों! इन पर कब्जा छोड़ना भी आसान नहीं था। फिर देर–सवेर दाम बढ़ने की उम्मीद[5] भी थी। सो उन्होनें मजदूरों से खेती करवानी शुरू की और कुछ ही वर्षों में जबकि स्थानीय मजदूर भी पलायन करने लगे तो नकद मजदूरी देने की मजबुरी सामने आई। जिसके कारण बाहरी मजदूरों से काम करवाने का सिलसिला शुरू हुआ। मगर जहां एक तरफ ये स्वयं कम जमीनों के मालिक थे वहीं इनका अपना इतिहास भी बहुत बेहतर नहीं था। स्वाभाविक है कि लुटेरा या दौड़ाई कहे जाने वाले 'मेव' का इतिहास लूटकर खाने का था। ये कोई गृहस्थ या कृषक जीवन के आदि नहीं थे। सो कृषि के लिये इन्होनें उन मजदूरों की बेटीयों से शादीयां आरंभ की। ताकि इनकी खेती सुचारू चल सके और मजदूरी का पैसा भी ना देना पड़े। फिर ट्रक ड्राईवरों ने लड़कियां लानी आरंभ की जिन्हें थोक व संगठित तरीके से खरीदने–बेचने का सिलसिला चल निकला।

इसकी पुष्टि ऑकड़े भी करते हैं।

4. नूँह और फिरोजपुर झिरखा जैसे नगरीय समाज आज भी वक्फ की जमीन पर बसे हैं। और हरियाणा में सबसे अधिक वक्फ परिसम्पत्ति यहीं है।
5. उमरद्दीन सालेह हेडी ने जैसा कहा

'पारो, स्वामीयों की जमीन (बीधा में)

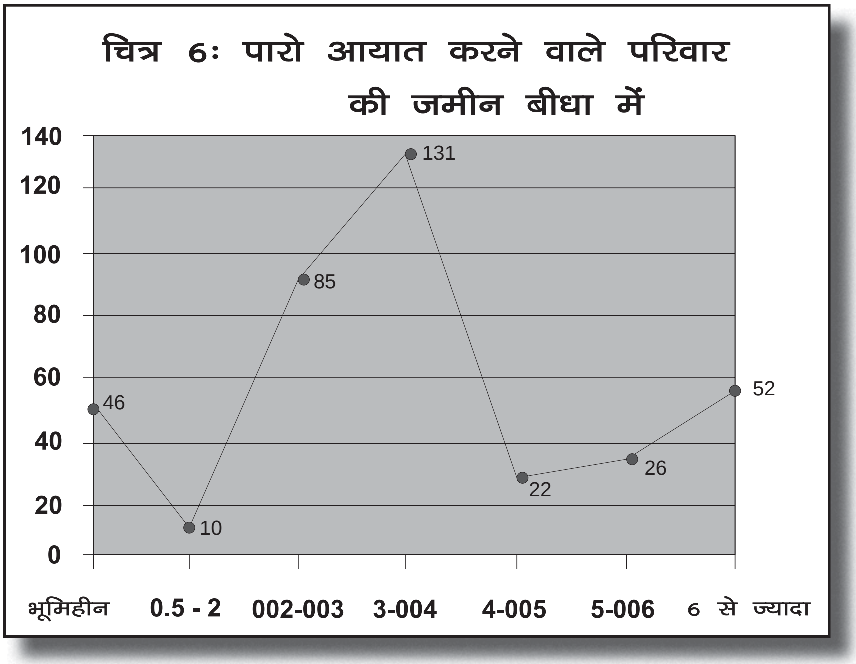

उपर्युक्त चार्ट 'पारो' लाने वाले परिवारों के भूस्वामित्व को स्पष्ट करता है। जिसमें स्पष्ट है कि 'पारो' आयात करने वाली सबसे बड़ी संख्या के पास 2 से 5 बीघा तक जमीने हैं। ये तथ्य उन तर्कों को स्पष्ट तौर पर काट देता है जो गरीबी को 'पारो' लाने का कारण बताते हैं! स्पष्ट है कि 'पारो' लाने वाले परिवारों की बड़ी संख्या भूमिहीन नहीं है। हां मगर इन जमीनों का उत्पादन पहाड़ी जमीन और बेहतर तकनीक ना होने के कारण बहुत कम है। जिसमें अधिक पूँजी नहीं लगायी जाती है और यहां निरंतर नकद मजदूरी का भुगतान कर कृषि कार्य फायदे का सौदा नहीं होता। इसलिये पूरा परिवार ना तो इस पर आश्रित रह सकता है और ना ही परिवार के पुरुष सदस्य इनपर अपना जीवन व्यतीत कर सकते हैं। इन्हीं कारणों से कृषि का काम औरतों के हाथों चला गया और फिर जब 'पारो' का विकल्प आया तो मुफ्त के मजदूर के रूप में इनकी भूमिका सीमित होती चली गई[6]।

वर्तमान में 'पारो' महिलाओं की स्थिति और उनकी दिनचर्या इसकी बेहतर पुष्टि करती है। न केवल कृषि मजदूर के बतौर बल्कि कई मामलों में इन्हें परिवार चलाने वाले कमाऊ सदस्य की स्थिति में भी देखा जा सकता है। दुकानों अथवा दूसरे छोटे–छोटे व्यवसायों के संचालन में इनकी भूमिका बेहतर ढंग से देखी जा सकती है। फुटकर बिक्री, मौसमी फलों या चूड़ियां और अन्य श्रृगांर वस्तुओं की हाट–बाजार में बिक्री करने वाली महिलाओं में, जो मुसलमान है, अनिवार्य तौर पर 'पारो' महिलाएं हैं। जो तथाकथित पति के शराबी अथवा किसी प्रकार से विकलांग होने के कारण अपने परिवार की आर्थिक बागडोर संभालती हैं।

6. जैसा कि गॉधी ग्राम धासेडा बीचौंजियॉ में स्थानीय बुजुर्ग नागरिकों के साथ एफ. जी. डी. का निष्कर्श है।

नकारों और विधुरों के लिये[7]

'पारो' लाने के कारणों में एक बड़ा कारण है सामाजिक रूप से बहिष्कृत व किसी भी प्रकार से अयोग्य अथवा विधुरों के विवाह की व्यवस्था किया जाना। जब किसी कारण विधुरों का विवाह सामाजिक मान्यताओं के साथ स्थानीय लड़कियों से नहीं हो पाता तब इनके लिये बाहर से लड़कियां लाई जाती हैं। ऐसे युवक बेहद गरीब और चरस आदि के गंभीर व्यसनी हो सकते हैं। मगर ये अधिकांशतः वैसी लड़कियां लाते हैं जिन्हें पहले से ही किसी परिवार ने रखा हो और फिर छोड़ दिया हो। ऐसी लड़कियों को आश्रय की आवश्यकता होती है। इनका कोई मालिक भी नहीं होता इसलिये उस लड़की का कोई पैसा चुकाना नहीं होता। मगर ऐसे मामले बहुत कम देखने में आते हैं। यहां उन बुजुर्गों को भी रखा जा सकता है जो घरेलू काम-काज के लिये लड़कियां खरीदते हैं।

मगर सबसे अधिक मामले विधुरों के हैं। जो उनकी पत्नियों की मौत के पश्चात अपने बच्चों की देखभाल के लिये बाहर से लड़कियां लाते हैं।

कन्या भ्रूण हत्या, लैंगिक अनुपात बनाम 'पारो'

'पारो' के आयात के लिये जिम्मेदार बहुप्रचारित कारण है कन्या भ्रूण हत्या। अक्टूबर 2006 में नगीना के 20 गांवों के लैंगिक अनुपात पर बारंबरता चार्ट देंखें।

उपर्युक्त चार्ट में 20 गाँवों की कुल महिला-पुरुषों और किशोर-किशोरियों की कुल संख्याओं का उल्लेख है। जहां कि तमाम किशोर-किशोरियों का जन्म 1991 के पश्चात् हुआ है।

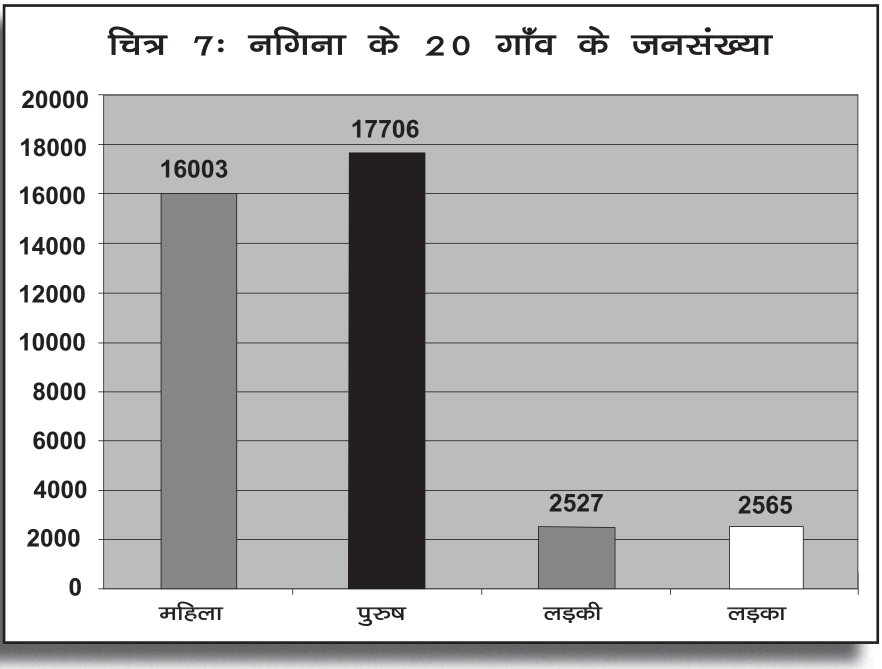

7. हसनपुर नगीना की एफ. जी. डी. पर आधारित

प्रतिशत में अंतर देखें

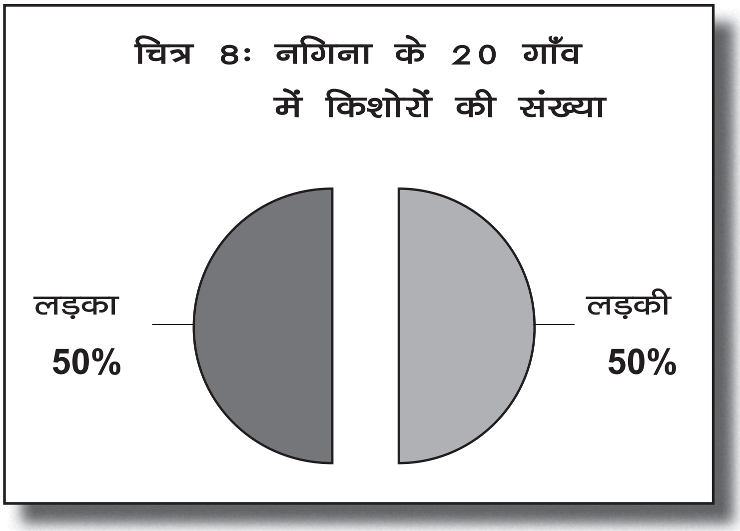

जहां कि 2565 लड़कों के मुकाबले 2527 लड़कियां हैं। जो कि मात्र 35 का अंतर है अर्थात लैंगिक अनुपात प्रति सैकड़ा अंतर मात्र 0.035 का है।

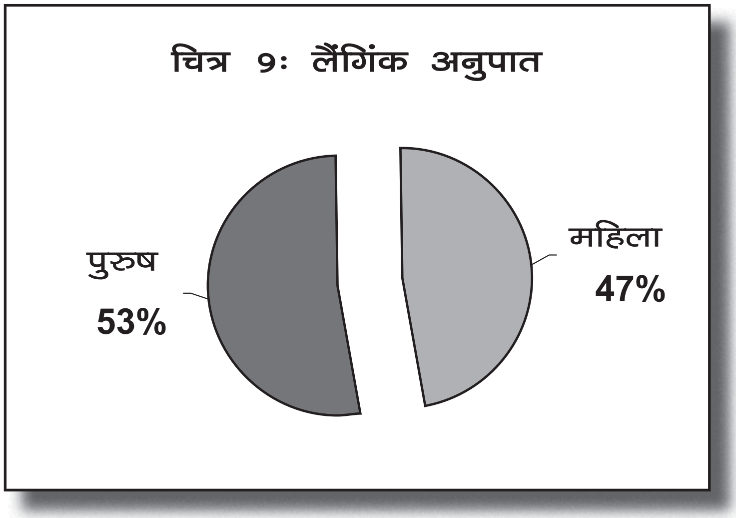

वहीं इन गांवों में कुल 17706 पुरुषों के विरुद्ध 16003 महिलाएं, जो कि 1703 का अंतर है। अर्थात लैंगिक अनुपात प्रति सैकड़ा 18 का अंतर है।

ये अंतर प्रभावी रूप से लड़कियों के आयात की मजबूरियों को स्पष्ट करता है और कन्या भ्रूण हत्या को एक बड़े कारक के रूप में प्रतिस्थापित करता है। परन्तु व्यापक आंकड़े इस तथ्य को झुठला देते हैं। जहां आयात क्षेत्रों के लैंगिक संतुलन के आंकड़ों से तुलना की जाये। बहुत व्यापक अर्थों में ना सही, मगर करीब 35 वर्षों से लगातार 'पारो' का आयात और उस संख्या का नगन्य स्थिति में होना तमाम तर्कों पर भारी पड़ता है। यहां उन तमाम आंकड़ों पर अध्ययन की व्यापक आवश्यकता है।

कहा नहीं जा सकता धार्मिक या अन्य किसी कारण से यहां कन्या हत्या पर रोक लगी हो। यहां की औरतों के लिये काम और शिक्षा के अलग-अलग मानदंड तय हैं। जिसके कारण उनसे खेती व मवेशियों के काम संस्कृति के नाम पर लिये जाते हैं और शिक्षा से रोकने के लिये धर्म में उल्लेखित पर्दा प्रथा का हवाला दिया जाता है। कन्या, भ्रूणावस्था के बजाय जन्म लेने के पश्चात् पूरी नियोजित साजिश के साथ मार दी जाती हैं। लड़कियों द्वारा मर्यादा और सामाजिक प्रतिष्ठा को चोट पहुंचाने की आशंका इसका कारण है। यहां उल्लेखनीय है कि बेटी पर अत्याचारों के विरुद्ध अदालतों में मुकदमों

की बाढ़ हैं मगर इसे अपनी (लड़की के पिता की) इज्जत और नाक के सवाल से जोड़कर देखा जाता है। तलाक के अलावा गुजारा भत्ता और जेल भिजवाने में उनकी जिद लड़कियों की भावनाओं व इच्छाओं की पूर्ति के बजाय अपने अहम की संतुष्टि के लिए होती है।

कोई शक नहीं कि लड़कियों की कमी है। मगर ये स्थिति कमोबेश पूरे देश में है। इस क्षेत्र के अलावा इस तरह की मानवीय तस्करी या दूसरे क्षेत्रों मे विवाह करने का तरीका अब तक सामने नहीं आया है।

दूसरी तरफ क्षेत्र से बाहर पहला विवाह करने वाले कुल आंकड़े (यहां कि अध्ययन में कुल 372 की संख्या ली गई है) मात्र 11 प्रतिशत हैं। अर्थात 89 प्रतिशत लोगों ने क्षेत्र के बाहर दूसरी या कोई अधिक संख्या वाली शादीयां की हैं। (एन. एच. ओ. देखें)

ये शादीयां प्रथम बार स्थानीय लड़कियों से की गई। फिर तलाक या पत्नी की मृत्यु के पश्चात्, कई मामलों में पत्नी के जीवित व साथ में रहते हुए भी 'पारो' का आयात हुआ। यहां प्रथम बार क्षेत्र से बाहर विवाह करने वाले 11 प्रतिशत अर्थात 41 व्यक्तियों में 35 शारीरिक रूप से विकलांग हैं। वहीं 6 व्यक्तियों ने प्रेम विवाह और क्षेत्र से बाहर रहने के कारण वहीं विवाह किया। इनमें सभी ने दिल्ली में शादी की है। यहां ध्यान रहे कि दिल्ली में रहने वाली इन लड़कियों के अभिभावक उत्तर प्रदेश के हैं। और ये मामले शोध विषय से अलग हैं परन्तु इनकी स्थिति भी अन्य आयातित लड़कियों से इतर नहीं कही जा सकती।

'पारो', प्रशासन और मानवीय तस्करी

28 जून, 2003 को मानव तस्करी के बाबत अभियोग संख्या 281/03 मेवात में दर्ज होने वाला अंतिम अभियोग था।

प्रशासनिक अधिकारी थोड़े झिझक के बाद मानवीय तस्करी की बात भी मानते हैं। मगर शिकायतों के ना आने की बात कह अपना दामन बचा जाते हैं। प्रशासनिक हलकों में 'पारो' की जानकारी बड़े पैमाने पर मौजूद है मगर स्थानीय संस्कृति में दखल देना उन्हें अच्छा नहीं लगता।

28 जुन 2003 को मानव तस्करी के बाबत अभियोग संख्या 281/03 मेवात में दर्ज होने वाला अंतिम अभियोग था। वादी थे मेवात के हथिन थाना के तत्कालीन प्रभारी ई0 सुखविन्दर सिंह। इस अभियोग के तहत संदेशकली हावडा के पति–पत्नी, दलाल व उक्त थानान्तर्गत मलाइ गाँव के तीन व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया तथा दो लड़कियों को मुक्त कराया गया था। इसके पूर्व भी इस पदाधिकारी के द्वारा 'पारो' मुक्त कराई गई थी। मगर इनके तबादले के साथ ही जैसे पुलिस को लकवा मार गया और आज तक इस संबंध में एक भी केस दर्ज कर पाने में असफल रही। ई0 सुखविन्दर सिंह द्वारा

की गई कारवाईयां उनके स्वयं की तथा पुलिस मुखबिरों की सूचना के आधार पर की गई थीं। वर्तमान में सिरसा में पदस्थापित इस अधिकारी के तबादले का कारण भी इसे ही बताया जाता है। चाहे जो भी हो मगर इस अभियोग में तमाम अभियुक्त न्यायालय द्वारा बरी कर दिये गये।

गोराक्षर हथिन का एक गाँव है। ये वो गाँव है जहाँ से 'पारो' की खरीद–बिक्री संचालित होती है। यहां प्रत्येक घर लड़कियां बेचने वाला माना जाता है। आज की स्थिति में भी यहां के घरों में बिक्री के लिये रखी गई लड़कियां मिलेंगी। यहां बिक्री के बाद शादी कराकर लड़कियां दी जाती है। मगर जब ये भी पता ना हो कि खरीदार किस धर्म का है, वहां निकाह की वैधता पर प्रश्नचिन्ह तो अवश्य ही लग जाता है। जैसे नूँह के मिडगोला में पांच 'पारो' मुसलमान हैं, जो जाट परिवारों में है और उन्हें मुसलमानों द्वारा ही बेचा गया है।

इस गाँव के परिवारों के साथ मिल कर कुछ 'पारो' ने तो लूट को अपना व्यवसाय बना लिया है। इसके तहत उन्हे जहां बेचा जाता है वो वहां से कुछ दिनों बाद धन लेकर भाग जाती हैं और उनका संरक्षक परिवार उन्हें फिर बेच देता है।

ताउरो के इंस्पेक्टर वीरेन्द्र सिंह 'पारो' के आयात व खरीद–बिक्री को मानते हुए मजबूरी में उठाया गया कदम करार देते हैं। साथ ही मेरी जानकारी दुरूस्त करते हैं कि ''खरीदा बेचा नहीं जाता, आने जाने का खर्च लिया जाता है और 'पारो' भी उन्हें पति मानती हैं।'' अब उन्हे कौन बताये कि जिस लड़की का रंग जरा भी साफ हो या थोड़ी भी सुन्दर हो तो वो स्वयं ही दिल्ली या मुम्बई के चकले में चली जाती है। वो उन 'पारो' को जानते ही नहीं जो साँझ के ढलते ही सड़क के किनारे चलना शुरू कर देती हैं। श्री सिंह अंत में कहते है ''देखिये पुलिस वाले भी समाज का अंग हैं। इसलिये पता तो चलता है। मगर हाथ डालना कठिन है।''

एस. आई. यामीन खान इन बातों को मुसलमानों को बदनाम करने वाली अफवाह बताते है और कहते हैं ''थोड़ा बहुत कहां नहीं है।'' बात करने पर वो मानते हैं कि ''हां ऐसा है और बड़े पैमाने पर है, पर ये सब खुले तौर पर थोड़े ही होता है। पता ही नहीं चल पाता।''

एक बात तो अवश्य है कि 'पारो' अपनी शिकायत पुलिस तक नहीं पहुंचाती और अगर पहुंचाती भी हैं तो उस मर्द के साथ रहने की आस में, उनके विरूद्ध खरीदने–बेचने जैसे आरोप नहीं लगाती।

अपना अनुभव बांटते हुए श्री रजनीश, सहायक रीडर आरक्षी अधीक्षक–कार्यालय, मेवात कुछ दिनों पूर्व की एक घटना का जिक्र करते हैं। हैदराबाद से एक लड़की को लेकर आया एक स्थानीय युवक अपनी पूर्व पत्नी एवं परिवार के दबाव में आकर उक्त लड़की को जयपुर घुमाने के बहाने छोड़ आया था। साथ ही उस लड़की के जेवर व पैसे भी

रख लिये। पुलिस के पास पहुंची लड़की पुलिस से मध्यस्थता तो चाहती थी मगर वो उसके विरुद्ध कोई अभियोग नहीं लगाना चाहती थी। उसे आशा थी कि उसका पति पुनः उसे ले जायेगा। इस मामले में कोई केस दर्ज नहीं हो पाया और न ही उस लड़की का फिर कुछ पता चल पाया।

अपने अनुभव बांटते हुए पंजाब केसरी के स्थानीय संवाददाता संजय गुप्ता बताते हैं कि एक दो वर्ष पूर्व एक 'पारो' (शायद बिहार से) थाने में अपने बेचे जाने की शिकायत कर रही थी। जिस पर कोई विशेष ध्यान नहीं दे रहा था। मैने स्वयं भी नहीं दिया। बाद के समय में वो लड़की सडक पर वेश्यावृति करते हुए देखी गयी।

इस मामले को पुलिस ने दर्ज नहीं किया था। चूंकि आरक्षी अधीक्षक–कार्यालय के अनुसार वर्ष 2003 के पश्चात् इस तरह का कोई मामला दर्ज तो दूर पुलिस के संज्ञान में भी नहीं आया।

'पारो' का आयात

'पारो' के आयात के बड़े केन्द्र हैं हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश), असम, प0 बंगााल, उड़िसा झारखंड, बिहार तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश। इन तमाम इलाकों में दलालों का एक बड़ा नेटवर्क अपना काम बड़ी मुस्तैदी व स्वछंद रूप से कर रहा है। गरीब परिवारों तथा अन्य समस्याओं से ग्रस्त लड़कियों व उनके परिवार को सुनहरे भविष्य का ख्वाब दिखा कर ये अपना काम अंजाम दे रहे हैं। वहां एक पूरे ड्रामे के साथ ये स्पष्ट किया जाता है कि उक्त व्यक्ति दिल्ली का व्यवसायी है तथा क्षेत्र विशेष के लोगों से बड़ा प्रभावित है। उक्त क्षेत्र विशेष के किसी व्यक्ति के कारण उसका व्यवसाय डूबने से बच गया। इसीलिए अब वो वहीं की किसी लड़की से विवाह करना चाहता है। लड़की वालों को उस व्यक्ति से मिला कर वो (दलाल) उन पर अहसान कर रहा है।

'मेवात' से उन इलाकों में जाने वाले ट्रक ड्राइवर बड़ी भूमिका निभाते हैं। इन्हे ही दिखाकर लड़कियों की शादी (जिसका मकसद लड़की को अपनी संपत्ति बनाकर बेचना है) की जाती हैं। फिर यहां लाकर लड़कियों को किसी जरूरतमंद को बेच दिया जाता है। जरूरतमंदों की श्रेणी में विकलांग, बूढ़े या बच्चों के पिता हैं, जिनकी पत्नियां नहीं है।

'पारो' लाने के कारणों के संबंध में की जाने वाली पड़ताल वाकई चौंकाने वाले तथ्य सामने लाती हैं।

'पारो' के आयात के कारणों में चार वर्ग उभर के सामने आये। सबसे बड़ा कारण जो कुल संख्या का 72 प्रतिशत है। वो है काम–काज के लिये। इन काम–काजों में कृषि व घरेलू काम–काज समान रूप से शामिल है। वहीं कुल 13 प्रतिशत लोग लड़कियों की कमी की बात स्वीकार करते हैं।

चित्र 10: पारो लाने का कारण

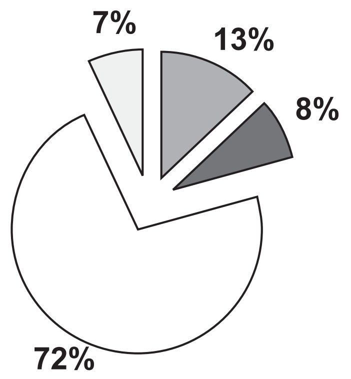

प्रथम कारण है काम के लिये बाहर से लड़कियों का आयात। ताकि वो बिना किसी ना नुकुर के चुपचाप अपना काम कर सकें। दूसरा, लड़कियों की कमी या क्षेत्र में शादी ना हो पाना। तीसरा कारण बड़ा अजीब है और वो है अपनी पूर्व पत्नी से तंग आकर उन्हें सबक सिखाने के लिये। चौथा, बस यूँ ही कर लिया, सहारा देना था बेचारी को और कुछ लोगों को पता नहीं बस अभिभावक ने कहा तो कर लिया।

उपर्युक्त चार्ट में संयुक्त बिहार को दर्शाया गया है।

मेवात में 'पारो' के आयात का सबसे बड़ा केन्द्र है संयुक्त बिहार अर्थात वर्तमान का बिहार व झारखंड। जहां से अकेले 33.065 प्रतिशत 'पारो' हैं। वहीं दूसरा स्थान प0 बंगाल का है जहां से 18.280 प्रतिशत, तीसरे स्थान पर महाराष्ट्र और आंध्रप्रदेश संयुक्त रूप से जहां से क्रमशः 12.903 और 12.097 प्रतिशत, असम से 7.258 प्रतिशत, गुजरात से 6.720 प्रतिशत और उत्तरप्रदेश व दिल्ली से लगभग 1.1 प्रतिशत 'पारो' का आयात हुआ। मगर 5.914 प्रतिशत 'पारो' को पता नहीं कि वो कहां से कब आई और कैसे आई हैं?

चित्र 11: पारो महिलाओं के आयात क्षेत्र

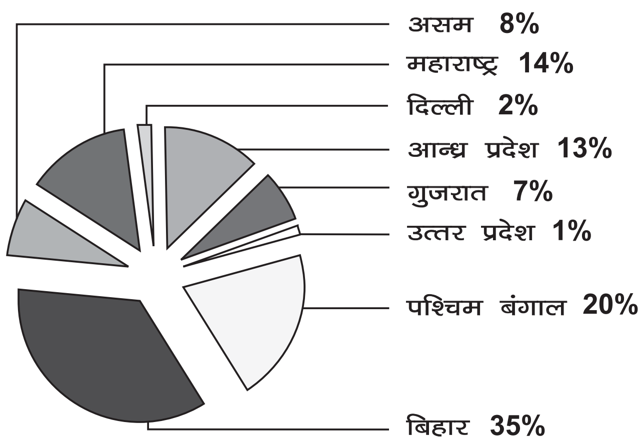

संयुक्त बिहार से 'पारो' के आयात वाला क्षेत्र नक्सल प्रभावित उत्तरी बिहार और दक्षिणी झारखंड की पट्टी है। जिसमें गया, जहानाबाद, औरंगाबाद, सासाराम व चतरा, सिमरिया, हजारीबाग तथा पलामु आदि जिले शामिल हैं। विशेषकर इन जिलों का वो क्षेत्र जहां से शेरशाह सूरी मार्ग एन.एच. 2 गुजरते हुए दिल्ली और कोलकाता को जोड़ता है। ट्रक ड्राइवरों के लिये ये इन लड़कियों की तस्करी के लिये सबसे आसान और सम्पर्क वाला क्षेत्र होता हैं। जहां के ढाबा मालिक अथवा अन्य स्थानीय दलाल के सहयोग से लड़कियों की शादी के नाम पर उनकी आसानी से तस्करी की जाती है।

वहीं महाराष्ट्र के जलगांव व आंध्रप्रदेश के आदिलाबाद, हैदराबाद जैसे क्षेत्र जो व्यवसायिक परिवहन के केन्द्र हैं और जहां से ट्रक ड्राइवर आते-जाते हैं।

पारंपरिक रूप से करेवा (नियोग) राजपूत जातियों की परंपरा का अंश है। संस्कृतिकरण और कुछ हद तक लड़कियों की कमी के कारण से इन ड्राईवरों ने लड़कियां लाने का बीड़ा उठाया और ये पूरी तरह एक व्यवसाय बनता चला गया।

झारखण्ड के चतरा जिले के प्रतापपुर थानान्तर्गत हुमांजान निवासी दानिश मियां (दल्लवा के नाम से प्रसिद्ध) 80 के दशक से इस व्यवसाय में हैं और मेवात में भी समान रूप से लोकप्रिय हैं। जिनके द्वारा आज तक सैकड़ों लड़कियॉ ठिकाने (मेरे पास और कोई अन्य शब्द नहीं) लगाई गयी हैं।

'पारो' का आयात और दलालों का संजाल

'पारो' के आयात में व्याप्त दलालों के संजाल में सबसे प्रमुख भूमिका स्वयं 'पारो' की हैं। पहले यहां आई ये महिलायें अपने मायके जाने और परिवार के सदस्यों से मिलने की ललक के साथ-साथ पति के दबाव में गाँव के किसी युवक अथवा पति के किसी मित्र या अन्य किसी के लिये लड़की लाने को तैयार होती हैं। फिर मायके जाकर अपने रौब व सम्पन्न होने का प्रदर्शन कर लड़की के ब्याह का उपकार अपने पारिवारिक दायरे अथवा पड़ोसी पर कर देती हैं।

इस काम से मिले धन और उसके स्वामी की प्रशंसा उसे पुनः इस काम को करने को उद्वेलित करती हैं अथवा फिर पति का दबाव लगातार काम करना शुरू कर देता है। दलालों के इस जंजाल में इनकी भूमिका निर्विवाद रूप से केवल मोहरे की होती है। ऐसा तय भी नहीं कि लड़की जिस व्यक्ति के नाम पर लाई जाए उसी को दी जाए। अगर लड़की का दाम किसी दूसरे से बेहतर मिला तो वो लड़की अवश्य ही अधिक मुनाफा देने वाले को दे दी जायेगी।

एक 'पारो' राजदा बताती हैं कि ''उसने जब अपने शहर से लड़की लाने से इंकार किया तो पहले तो उसके पति ने उसे भगा दिया और वो गुस्से में अपने शहर मुम्बई चली गयी। मगर वहां के रोज-रोज के ताने और समस्याओं से तंग आकर उसे फिर आना पड़ा और पिछले दो वर्षों से वो अपने स्वामी के गाँव में रह रही है। उसके बारे में

उसके पड़ोसी और बाजार के लोग कहते है कि वो धंधे वाली है।'' सच्चाई चाहे जो हो मगर वो मेवात विकास प्राधिकरण के लिये काम करती है और उसे आशा है कि एक दिन उसका पति उसे जरूर मिलेगा। वो ये जानती है कि ऐसा आसान नहीं होता मगर कहती है उम्मीद पर दुनिया टिकी है।

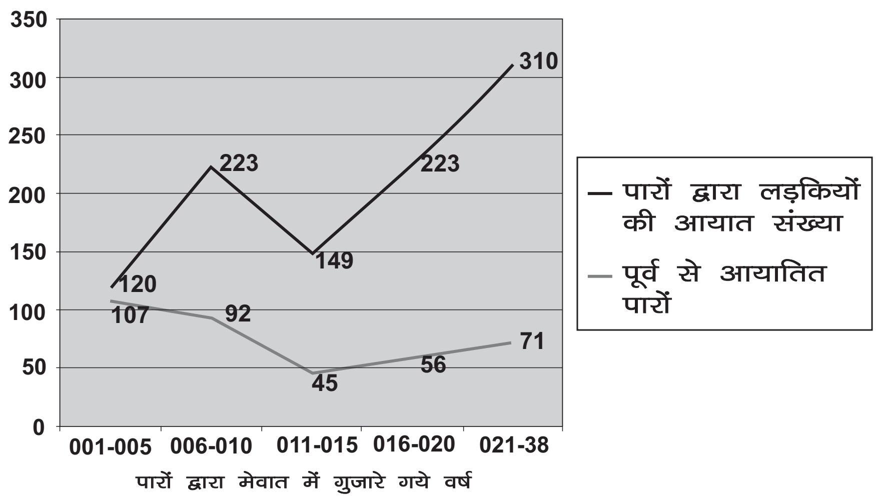

चित्र 12: पारो के माध्यम से नई लड़कियों का आयात

उपर्युक्त चार्ट जहां एक ओर लड़कियों के आयात में स्वयं आयातित लड़कियों के योगदान को स्पष्ट करता है। वहीं ये भी दर्शाता है कि लड़कियों का आयात कोई नयी बात नहीं। चार्ट स्पष्ट करता है कि 21–38 वर्ष पूर्व क्षेत्र में आयात की जाने वाली जिन 71 महिलाओं का साक्षात्कार किया गया उन्होंनें 310 लड़कियाॅ लाने की बात स्वीकार की। वहीं हाल के 1–5 वर्ष के बीच आयात की जाने वाली ने अपने योगदान को स्वीकारा। अगर इसे दशक की नजर से देंखें तो 1–10 वर्ष के बीच लाई गई कुल 199 महिलाओं ने इस अवधि में 343 लड़कियों के आयात में भूमिका निभाई। वहीं 11–20 वर्ष के बीच आयात की गई कुल 101 महिलाओं ने 372 लड़कियों के आयात में अपनी भूमिका स्वीकारती है। 21–38 वर्ष के बीच आयात की गई कुल 71 महिलाओं ने 310 लड़कियों के आयात में अपनी भूमिका स्वीकारती है। आंकड़ों से स्पष्ट है, लड़कियों के आयात का प्रतिशत घट रहा है। वो भी तब जबकि लैंगिक असंतुलन में बढ़ोत्तरी जारी है और स्थानीय लड़कियों की संख्या कम रही है। स्वाभाविक है, 'पारो' के आयात का सबसे बड़ा या एक प्रमुख कारण लैंगिक असंतुलन नहीं है।

ये दूसरा पहलु है जो स्पष्ट हुआ और उसकी पुष्टि करते हुये बिवां की एक 'पारो' रूबीया बताती हैं कि अधिसंख्यक 'पारो' (अगर पत्नी मान भी लें) पहली पत्नी नहीं होती। रूबीया प0 बंगाल के 24 परगना जिले के भांगड़ थाने से 1996 में पारो बनकर आई थी और दस वर्षों में ही उन्होंने इतनी लड़कियां लाई कि पूछने पर उंगलियों पर जोड़ते हुए कहती हैं याद नहीं है। वे बताती हैं कि उन्होंने किसी से पैसे नहीं लिए। मगर उनकी देवरानी उनकी पीठ के पीछे से इशारा करते हुए बताती है कि पांच हजार लेती है।

मगर नूॅह में बैठे एक स्थानीय अखबार के ब्युरो चीफ कासिम साहब लड़कियों के खरीदने–बेचने की बात से इंकार करते हुए बताते है कि सिर्फ लाने का खर्चा लेते हैं। इनकी बात से अधिसंख्यक लोग सहमत होते हैं और बताते हैं कि लड़कियों के लाने में केवल लाने का खर्चा दिया जाता है। मगर थोड़ी सी झिझक के बाद अधिकांश लोग सच्चाई मान लेते हैं।

चित्र 13: लड़की लाने में रुपये की लेन देन

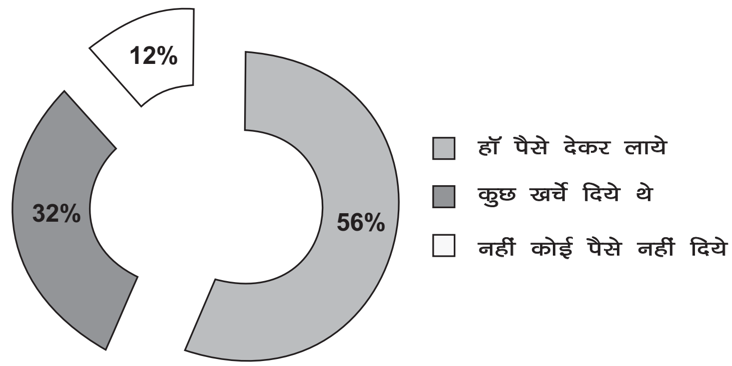

जहां उपर्युक्त वृत में 56 प्रतिशत स्पष्ट तौर पर रुपये देने की बात स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार लड़की लाने के लिये खरीदनी पड़ती है और उसके लिये तो दाम चुकाना ही पड़ेगा। वहीं 32 प्रतिशत लोग कुछ खर्चे दलालों को दिए जाने की बात कहते हैं और ये रुपयों का लेन–देन सीधे–सीधे मानवीय खरीद–फरोख्त का परिचायक है। इन लड़कियों का दाम 5000 से लेकर अधिकतम 70,000 तक है। जो लड़की की विशेषता आदि पर निर्भर करता है। हां मगर मेवात में ही रहते हुए एक हाथ से दूसरे हाथ जाने वाली 'पारो' का दाम क्रमशः कम होता जाता है।

चित्र 14: दाम तय करने वाले कारक

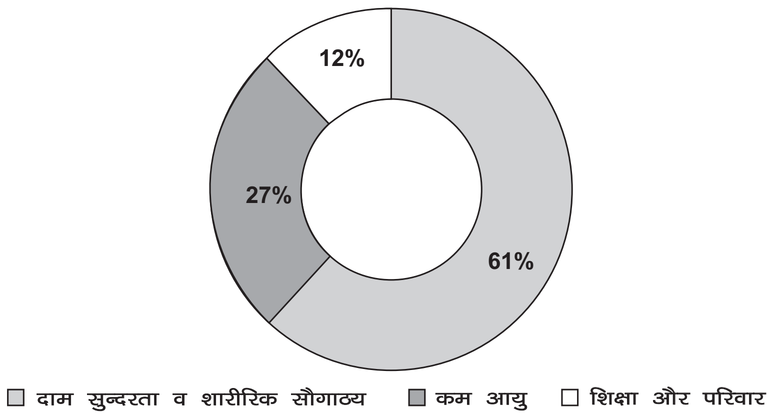

उपर्युक्त वृत दाम तय करने के कारकों पर आधारित है। जहां 61 प्रतिशत लोग अच्छा दाम देने से पहले लड़की की सुन्दरता और शारीरिक गठन देखते हैं। वहीं 27 प्रतिशत लोग कम आयु की लड़की का अधिक दाम देते हैं। दोनों ही मामलों में अगर लड़की सीधे अपने गांव या पार से आ रही हो तो इनके दाम अधिक होते हैं। जबकि मेवात में पहले ही आ चुकी लड़कियों के दाम समय के साथ कम होते जाते हैं। 5 साल के अन्दर ही 50,000 की पारो लड़की 5,000 की हो जाती है।

स्पष्ट है कि विवाह के नाम पर इन लड़कियों को उनकी सुन्दरता व आयु के आधार पर दाम चुका कर यौन उद्देश्यों के लिये लाया जाता है। जिसमें विधिवत दलाल भी मौजूद

हैं। ये न केवल मानवीय तस्करी है अपितु अनैतिक व्यापार अधिनियम का भी मामला बन जाता है। जिस पर ना केवल प्रशासनिक अमला चुप है, अपितु स्वंयसेवी संगठन और जन–संचार माध्यमों की भूमिका भी संदिग्ध प्रतित होती है।

स्थानीय शिक्षा व्यवस्था में पारो का योगदान

उपरी तौर पर तो पारो महिलायें स्थानीय संस्कृति में अपना कोई प्रभाव नही छोड़ पातीं। यहां तक कि इनकी स्वयं की संतान भी इनके विरुद्ध खड़ी हो जाती है। ताकि उन्हें 'पारो' की संतान के बजाय 'मेव' माना जाए। वहीं इन्हें सामाजिक मान्यता विरले ही मिल पाती हो। ऐसे में स्थानीय संस्कृति पर अपनी छाप छोड़ना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन प्रतित होता है। सही भी है, जब पिछले (कम से कम) 40 वर्षों के ज्ञात काल के बावजूद घरेलू–व्यवस्था में भी जिनकी कोई भागीदारी नहीं बन पाई तब वो संस्कृति और सामाजिक मूल्यों में अपनी क्या भागीदारी स्पष्ट कर पायेंगी ? मगर संस्कृतिकरण और लगातार परिर्वतनशील समाज में इन्होंने बेहतर मूल्यों का योगदान दिया है। भले ही परंपराओं का अहोर–बहोर (आना–जाना) ना हुआ हो। मगर इन महिलाओं ने अपनी जीवटता और जीवन संघर्ष की उन राहों का उद्‌घाटन किया है जो इस समाज के लिये अनजानी थीं। सामाजिक मूल्यों और सीमा के बंधन में आजादी और अभिव्यक्ति के अधिकार का उनका अनवरत संघर्ष न केवल स्थानीय महिलाओं अपितु बड़े मोर्चों पर व्यापक अधिकारों के लिये संघर्ष करने वाले सामाजिक कार्यकर्ताओं को भी बेहतर संघर्ष पथ की अनुभूति कराने की क्षमता रखता है।

यहां आने वाली 'पारो' महिलाओं का स्थानीय संस्कृति में सबसे बड़ा योगदान महिला शिक्षा के क्षेत्र में और दूसरा बड़ा योगदान भी शिक्षा के क्षेत्र में ही है। जो है उर्दू भाषा के प्रसार का। दोनों ही क्षेत्रों में इनके योगदान ने समाज पर स्पष्ट छाप छोड़ी है। पहले से ही उर्दू आदि की प्राथमिक शिक्षा प्राप्त इन पारो युवतीयों ने स्थानीय महिलाओं को न्यूनतम शिक्षा प्राप्त करने के लिये प्रोत्साहित किया। 'पारो' के आयात से पहले अन्य मुस्लिम बहुल क्षेत्रों की तरह यहाँ उस्तानी[8] प्रथा नहीं थी। जिसकी नींव भी इन पारो महिलाओं ने ही डाली और लड़कियों को मजहबी शिक्षा देने के लिये इन पारो लड़कियों ने उस्तानी बनने का बीड़ा उठाया। इसके बाद आज की स्थिति में मेव लड़कियां मुख्यधारा की शिक्षा के लिये भी बाहर आयीं। क्षेत्र में उर्दू भाषा का जो जनचलन सामने आया वो इन्हीं पारो महिलाओं की ही देन है। इससे पहले उर्दू भाषा जानने वाले पढ़े लिखे लोग व मुख्यधारा की शिक्षा से जुड़े लोग थे। जिनकी संख्या आज भी बहुत कम है। वहीं पत्राचार और अन्य सामान्य उपयोग के लिये यहां उर्दु लिपि का उपयोग तब बिल्कुल नहीं था। आज भी बहुत कम है। वहीं महिलाओं के हाथ में कलम या किताब आना, चाहे वो धार्मिक शिक्षा का मामला ही हो, बहुत मुश्किल और अजीब नजरों से देखा जाने वाला था।

---

८. मुस्लिम समाजिक पृश्ठभूमि में लड़कों के लिये मकतबों जहाँ लडकें शिक्षा ग्रहण करते हैं। ठीक वैसे ही लड़कियों के लिये महिला शिक्षिका नियुक्त की जाती है जिन्हें उस्तानी कहा जाता है। इन शिक्षक शिक्षिकाओं का वेतन आदि समुदाय के लोग आपस में चन्दे द्वारा इकट्ठा करते हैं।

देखने में आता है कि अधिकांश पारो युवतीयाँ स्थानीय महिलाओं से अधिक साक्षर व शिक्षित होती हैं। जो अपने तमाम कार्यों के बाद स्थानीय समाज में अपनी पैठ अथवा मान्यता स्थापित करने के उद्धेश्य से पड़ोसी लड़कियों को धार्मिक शिक्षा देती हैं। भले ही उसके खिलाफ उसका परिवार कितना भी बोले। मगर वास्तव में परिवार द्वारा कभी किसी समस्या आने पर समाज उनका पक्ष नहीं ले सका।[९] अर्थात शिक्षा को उन लड़कियों ने अपनी मान्यता और स्वीकार्यता के हथियार के तौर पर इस्तेमाल किया है। इस प्रकार कई लड़कियों ने सफलता भी पाई है। जिनको उनका तथाकथित पति अपने प्रयास के बावजूद सामाजिक दबाव के कारण अब तक नहीं निकाल सका। इस तरह के उदाहरण तो कम हैं मगर आशा की किरण अवश्य है।

वहीं दूसरी ओर उर्दू लिपि और भाषागत स्थिति भी आज के हालात में अपनी बेहतर स्थिति में हैं, जो इन पारो लड़कियों के कारण ही है। धीरे–धीरे उर्दू एक फैशन सी बनती जा रही है अर्थात उर्दू अथवा अंग्रेजी शब्दों का भाषागत प्रयोग पढ़े लिखे होने की पहचान बन रहा है। ये चलन यहां नया है। 4 से 5 वर्ष पूर्व तक स्थिति ऐसी नहीं थी और बेहतर व कठिन हिन्दी शब्द ही पढ़े लिखे होने की पहचान हुआ करते थे।

समाज में उर्दू के बढ़े मुल्यों का पता इसी से चलता है कि सरकार ने प्राथमिक स्कूल के स्तर पर उर्दू पढ़ाने की शुरुआत हाल में ही की है।

---

९. शमीना बींवा की एक पारो युवती

अध्ययन सारांश

- 'पारो' का आयात कम से कम 40 वर्ष पुराना है। आज की स्थिति में भले ही इसे असंतुलित लैंगिक अनुपात के प्रतिफल के रूप में देखा जा रहा हो।
- आयात की जाने वाली लड़कियों की खरीद–बिक्री इसका उचित प्रमाण है कि ये पेशागत और पारंपरिक है और ये सीधे–सीधे ठगी का एक रूप है।
- पूर्वी राज्यों में हाल के वर्षों में इस प्रकार के विवाह को ठग विवाह का नाम भी दिया गया है।
- यहाॅ टिककर रहने वाली लड़कियां वास्तव में और अधिक लड़किया लाने के लिये एक जरीया भर हैं।
- वंशीय परंपरा और मुस्लिम संस्कृतिकरण के दोहरे दबाव ने ऐसी स्थिति पैदा कर दी है जिससे परिवारों का बिखराव हो रहा है और ऐसे में शादी की उम्र निकल जाने या समाज से बहिष्कृत लोग आयातित लड़कियों के साथ अपना जीवन गुजार रहे हैं।
- लड़कियों की खरीद फरोख्त यहां सामाजिक मान्यता रखता है। यहां स्वयं की लड़कियों को बेचने के भी कई मामले देखने में आते हैं।

यद्यपि लड़कियों की कमी की बात को नकारा नहीं जा सकता है। परंतु स्पष्ट तौर पर लड़कियां खरीदने वाले परिवार के विषय में स्पष्ट हैं कि ये सामाजिक तौर पर अमान्य एवं पिछड़े हैं। ऐसे परिवार आमतौर पर समाज में प्रतिष्ठा नहीं रखते और किसी ना किसी कारणवश ये समाज में बुरा प्रभाव रखते हैं। समाज 'पारो' लाने वाले परिवारों को साधनविहीन दीनहीन और लपंट तत्व मानता है। यहां उल्लेखनीय है कि सम्पन्न और सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त परिवार इस तरह के विवाह को विवाह मानने से सीधा इंकार करते हैं। दरअसल इन परिवारों अथवा समग्र समाज में पारो महिलाओं का आयात या इनकी खरीद–फरोख्त को युवाओं की अय्याशी का जरीया माना जाता है। हरियाणा के इस समाज ने संस्कृतिकरण की राह पर अपनी अनेक परम्पराओं की तिलांजली दी है। मगर कई ऐसी परम्पराएं जो इनके युद्धरत इतिहास के शौर्य और मर्दवादी व्यवहार से जुड़ती हैं। उनके मोह से नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ीयों में द्वंद्व की स्थिति उत्पन्न हुई है और नवधनाढ़्यों ने 'करेवा' या 'नियोग' को दूसरे रूप में जन्म दिया है। ये नवधनाढ्य जमीन की बढ़ी कीमत और क्षेत्र के उद्योगिक विकास के कारण उत्पन्न हुए थे। जिनका उद्देश्य ही उपभोग था। ऐसे में यौन उद्देश्यों के लिये लड़कियों की खरीद–फरोख्त के लिये उनकी अपनी परंपराओं का सहारा लिया जाना कोई अचरज की बात नहीं थी। मगर समाज के प्रबुद्ध व पढ़े लिखे संभ्रात तबके इन परम्पराओं का समूल नाश चाहते थे और इस कारण वो 'करेवा' के इस नव रूप को स्वीकार करने के पक्ष नहीं थे। ऐसे में उत्पन्न सामाजिक द्वंद की स्थिति में इस तमाम पहलु को अनेक तर्कों से ढंका रहने देना ही उचित समझा गया। ताकि संस्कृतिकरण की गति जारी रहे और नवधनाढ्य दबंगों से टकराव की स्थिति पैदा ना हो। फिर धीरे धीरे इस स्थिति को परिवर्तित करने की कोशिश की जाये। मगर उपर्युक्त तमाम स्थितियों का प्रभाव आयात की जाने वाली लड़कियों की सामाजिक स्थिति पर पड़ा। पहले इन्हें किसी ना किसी रूप में समाज का संरक्षण प्राप्त हो जाया करता था। मगर अब स्थिति बदल गई और

जिम्मेदार नागरिक इस समस्या की जड़ स्वयं उन लड़कियों को ही मानने लगे। इस कारण इन सामाजिक अलम बदारों ने 'पारो' लड़कियों को सामाजिक तौर पर इतना पीछे धकेल दिया कि वहां से मुख्य धारा में लौटना इनके लिये असंभव हो गया। पारो लड़कियों की इस स्थिति का सीधा फायदा समाज के कुंठित व उपभोगीयों ने बेहतर उठाया और इनके आयात को श्रृंखलाबद्ध मानव तस्करी बना दिया।

पारो महिलायों की सबसे बडी समस्या उनका अपने स्वामीयों की सम्पत्ति में अधिकार का ना होना है। स्पष्ट रूप से उनके स्वामीयों की मृत्यु के पश्चात उनका स्थिति दयनीय हो जाती है। प्रथम तो उन्हें किसी दूसरे के हाथ बेच दिया जाता है और अगर ना भी बेचा जाये तो उनको परिवार के सदस्य उसे नहीं स्वीकार करते और इसके लिये कोई समाजिक दबाव नहीं होता जिससे की उन लड़कियों को उनकी मूलभूत आवश्यकतायें पूरी हो सके। दरअसल जब इनके पूरे परिपेक्ष्य को देखते हैं तो स्पष्ट होता है कि पारों महिलाओं की समाजिक छवि किसी यौन खिलौने के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

अनुशंसा

1. आयात क्षेत्र व गन्तव्य स्थल के प्रशासन द्वारा राशन–कार्ड व मतदाता पहचान–पत्र जैसे दस्तावेजों के नवीकरण एवं जांच हेतु आपसी सम्पर्क स्थापित किया जाना चाहिये। जिससे कि सरकारी दस्तावेजों का नवीकरण भी हो और पारो महिलाओं की स्थिति व जनसंख्या अंतर की स्थिति भी स्पष्ट होती रहे।

2. गन्तव्य के गाँवों के सरपंचों व चौकीदारों को आने वाली लड़कियों, यहाँ तक की सामान्य विवाहों का दस्तावेजीकरण की भी जिम्मेदारी सौंपी जानी चाहिये तथा उसका उपयोग सरकारी दस्तावेज, राशन–कार्ड अथवा मतदाता सूची निर्माण के समय किया जाना चाहिये।

3. आयात क्षेत्रों में भी ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिये और जिला प्रशासन को चाहिए कि इसकी जानकारी संबंधित क्षेत्र के प्रशासन को अग्राभीसारित कर दे। ताकि जहां सरकारी दस्तावेजीकरण सरल व सुलभ हो वहीं लड़कियों के आने–जाने की जानकारी प्रशासन के पास उपलब्ध हो।

4. गन्तव्य स्थल पर पुलिस महिला सेल का गठन अनिवार्य एवं सुचारू हो। इसे और व्यापक कर थाने स्तर पर किया जाना चाहिये।

5. महिला पुलिस सेल को ग्राम–स्तर पर विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम आयोजित करने चाहिये ताकि उसका दखल गाँव की आम महिला तक हो सके और उनकी शिकायतें बेहतर व व्यवसायिक ढंग से सुनी जा सकें।

6. प्रशासन व न्यायिक अधिवक्ताओं को महिला मुद्दों पर अधिक संवेदनशील बनाने के लिये कार्य किये जाने की आवश्यकता है। मानवीय तस्करी व अन्य मुद्दों पर उनके प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

7. क्षेत्र में कार्यरत स्वंयसेवी संगठनों व सामाजिक कार्यकर्ताओं को जागरूक बनाये जाने की आवश्यकता है। इनके साथ ही प्राथमिक स्वास्थ केन्द्रों के कर्मीयों व आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं को भी प्रशिक्षित किया जाना चाहिये। इन सभी को महिला पुलिस सेल के साथ नेटवर्किंग कर जोड़े जाने की आवश्यकता है।

8. मानवाधिकार संगठनों व अन्य प्रकार के अधिकार संगठनों व प्रशासनिक अमलों के बीच नेटवर्किंग व जागरूकता कार्यक्रम चलाये जाने चाहिये।

9. व्यापक तौर पर युवाओं व महिलाओं के बीच अधिकारवादी आंदोलन व संवेदनशीलता कार्यक्रम भी इस समस्या के विरूद्ध बेहतर हथियार साबित होंगे।

10. लड़कियों की ये खरीद–फरोख्त ना केवल उनके मानवाधिकारों का हनन और शोषण है बल्कि ये स्थानीय महिलाओं को भी प्रभावित करता है। वहीं इन लड़कियों के साथ अनेक यौन संबंधी का होना एच.आई.वी., एड्स जैसी घातक बीमारी का कारण बनने की संभावना भी बढ़ाता है। इस प्रकार के अन्य मुद्दों को जिससे स्थानीय परिवार सीधे तौर पर प्रभावित होते हैं, प्रचारित किये जाने की आवश्यकता है।

नमूना अध्ययन

I

नाम – असुबी
उम्र – 27वर्ष
मूल राज्य – असम

आज से करीब 15 वर्ष पूर्व असम से ब्याह कर आयी थी। पहले तो वो बड़ी खुशी–खुशी सुख सुविधा के सपनों को सजोये मेवात आयी। मगर उसके सारे सपने तब बिखर गये जब पता चला कि उसका निकाह जायज नहीं है। होता भी कैसे, उसका पति सलीम, सलीम नहीं सुरेश था। मेवात के एक गाँव का लुहार। वो बताती है, ''उसके साथ विवाह में धोखा हुआ। उसके माँ बाप से कहा गया कि वो मुसलमान है और दिल्ली में काम करता है, उसने बताया था कि वो राजस्थान का रहने वाला हैं। इसलिये उसके माँ–बाप ने उसका ब्याह सलीम के साथ कर दिया।''

वो अपनी कहानी बताती है। असम के एक गाँव में लाचार और गरीबी की जिन्दगी जी रही असुबी बी.एस.एफ. और असमीया जन संगठनों के आंदोलन में पिसती आ रही थी। वो 10 साल की उम्र से ही जानने लगी थी कि मुसलमान होना बंगलादेशी होने जैसा है और बंगलादेशी शायद चोर–लुटेरों का गिरोह था। उसे ताज्जुब होता था कि पार्टी वाले उसके घर और जमीन को भी अपना बताते थे।

उसने जैसे ही 12वें साल में कदम रखा उसके बाप की चिन्ता बढ़ने लगी। आखिर उसकी बड़ी बहन इसी उम्र में तो पार्टी के बहादूरों के हत्थे चढ़ गई थी और जब लौटी तो उसे याद है वो दर्द से कराह रही थी। उसके कपड़े खून से लथपथ थे और दो दिन बाद उसने दम भी तोड़ दिया था। पुलिस को शिकायत करने गया उसका बाप गुस्से में लौटा था।

उसके बाप ने उसे हफीज चाचा के साथ कलकत्ता भेज दिया ताकि वो सुरक्षित रह सके। कुछ दिनों के बाद उसके चाचा ने उसके बाप को सलीम से शादी करने की बात रखी और फिर निकाह हुआ। मगर यहां आ कर भ्रम टूटा और उसे सच पता चला कि उसके चाचा ने उसका सौदा 5 हजार में तय करके बेच दिया था। खैर अब वो मजबूर थी उसे वहीं रहना था। स्वाभाविक है उसके माँ–बाप को पता भी गलत दिया गया था और उसे अपने घर का पता याद भी नहीं था।

पहली बार उसे दर्द का अहसास हुआ। वो बुरी तरह डर गई थी और उसे किसी कि भाषा भी समझ नहीं आ रही थी। वो अपना दर्द किसको कहती? वो रोती रही और जाने कब उसकी दबी–दबी सी सुबकी आवाज उसके लिये लोरी बन गई। उसे पता नहीं वो सो चुकी थी। सपने में उसने देखा एक बड़ा हाथी, जो उसको कुचलना चाहता था और वो चीखना चाहती थी। मगर जैसे उसके मुंह पर कोई शिकंजा दबा था। वो अपने जिस्म पर बड़ा भारी बोझ महसूस कर रही थी।

वो समझ गई थी कि हफीज चाचा ने बेवकूफ बना उसे बेच दिया है। या अल्लाह, इस हरामी को कीड़ा पड़े, हम उसकी बेटी जैसी ही तो थीं फिर उसने ऐसा क्यों किया।

जहां पहाड़ों को देख–देख उसकी आँखें फटी जाती थी अब आंगन से बाहर भी ना देख पाती थी। क्या समझती वो कहां है।

वो आज जान पाई थी उसको बेच दिया गया। 10 हजार में अब वो एक लुहार की बेरबानी थी और वो दिल्ली के पास ही मेवात में थी। उसे पता चल गया था कि वो अब अपने माँ–बाप से कभी नहीं मिल सकती।

वो हालात से समझौता कर के वहीं रहने लगी। काम और मार–पिटाई तो खाने–नाश्ते की तरह थे। परिवार के तमाम सदस्य उसके साथ ऐसा व्यवहार करते जैसे वो कोई वेश्या हो। घर के तमाम मर्द उसके ऊपर गलत नजर रखते थे। जब ये बात उसने अपने 'पति' को बताई तो उसने एक और धमाका किया कि उसे किसी एक के बजाये सब के लिये ही खरीदा गया है और उसे सब को संतुष्ट करना पड़ेगा।

वो अब समझ चुकी थी अब कुछ भी हो उसे यहां से निकलना है। इसलिये वो अब रात को सोने से पहले जोर–जोर से कलमा पढ़ती। ताकि कोई मुसलमान आदमी उसकी आवाज को सुन ले और उसको यहां से निकाल सके। दो दिन बाद जैसे ही घर वालों को पता चला उन्होंने उसकी पिटाई शुरू कर दी। उसकी चीख से गांव के लोग जमा हो गये तो पता चला कि लोहार ने एक मुसलमान लड़की लाई है। पंचायत बैठी और लड़की को बुखाराका के एक बुड्ढ़े के साथ लगा दिया गया। उस बुढ्ढ़े ने भी लुहार को पैसे चुकाये। दोनों घरों में अंतर के विषय में वो कहती है ''कुछ खास नहीं वो लुहार था ये मुसलमान मेव है। बस! इसकी तीन शादियां पहले ही हो चुकी हैं। पहली वाली तो जल कर मर गई, दूसरी भाग गई, तीसरी मैं हूं। तीन बच्चे मेरे अपने है, पांच पहली वालीयों के। जिन्दगी है तो कट ही जायेगी। उसे ये पता नहीं वो कहां की है। बस लोग कहते हैं कि असम की है और इसलिये वो भी यही मानती है। वो क्या घर जाना चाहेगी का जवाब होता है 'नहीं! क्यूँ जाऊं, अब यहीं मर–खप जाना है।'

II

नाम – हमीदन
उम्र – 30 वर्ष
मूल राज्य –प0 बंगाल
वर्तमान में नगीना

आज से 20 साल पहले जब हमीदन ने पहली बार 'मेवात' की जमीन पर कदम रखा तो उसके शुरूआती दिन बड़े मुश्किल भरे रहे। घरो के काम के अलावा खेत में मजदूरी करना, उसका मनोरंजन और मजबूरी दोनों थी, सो किया। मगर चार साल में ही उसके पति का मन भर गया और उसने हमीदन को बुखाराका के एक बुढ्ढ़े के पास ला पटका। बुढ़े व्यक्ति के पास जमीन का एक छोटा टुकड़ा था और पूर्व की पत्नी से बच्चे भी। उसने तकदीर मानकर सारे काम–काज और बच्चों की परवरिश को निपटाया। हिंसा व शोषण आदि पर उसका स्पष्ट विचार है कि सब जगह ऐसा होता है। इसलिये इसमें कुछ नया नहीं, बस इंसान को अपना काम करना चाहिये। हमीदन अपनी स्थिति से संतुष्ट है। क्योंकि उसके पति की मृत्यु के बाद भी वो अपने घर में रहती है और मकान पर उनका स्वयं का अधिकार है। वो सुबह के 5 बजे घर से निकल जाती है। जंगल से लकड़ी आदि लाने के पाश्चात अपनी किराना दुकान खोलती है। बेटे के जगने के बाद खेतों की ओर, फिर शाम को वापस आकर कुछ घरेलू काम निबटाती हैं और फिर सो जाती है। वो कहती हैं कि ''मुझे लोग 'रिश्तों' के नाम से पुकारते हैं 'पारो' नहीं कहते। मगर फिर वो मानती हैं कि पीछे में उन्हें 'पारो' ही कहा जाता है।

वो बताती हैं कि ''उन्होनें अब तक जिन लड़कियों का 'विवाह' यहां करवाया वो सब यही हैं और सुखी हैं। उन्होनें करीब 8 लड़कियों का विवाह यहां करवाया है।'' हालांकि वो मानती हैं कि यहां औरतों के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार होता है। जो उन्हें पसन्द नहीं। मगर वो स्पष्ट करती हैं कि लड़कियों को खरीदना–बेचना इनके यहां आम बात है, ये अपनी लड़कियों को भी बेचते हैं, तो हम क्या हैं।

III

नाम – वहीदा
उम्र – 25 वर्ष
मूल राज्य – झारखंड
वर्तमान में नुँह

वहीदा स्वयं को स्वतंत्र 'पारो' मानती है। जो अपनी आजादी रखती है। कारण है उसका देह व्यापार में लिप्त होना। नुँह बस अड्डे के समीप विदेशी शराब दुकान के आस–पास सांझ ढले खड़ी होने वाली महिलाओं में वो भी है। उसके साथ मेरा परिचय तब हुआ जब वो मेरे ठहरने वाली धर्मशाला में किसी के साथ ठहरी थी। वो अपने विषय में बड़ा खुला विचार रखती है। कहती है कि उसे चिलावली वहाब लाया था। वो बताती हैं कि ''वो हमेशा ही नई–नई लड़की लाता है, अभी हाल में भी अहमदाबाद से लाया था। जिस पर लड़की वालों को असलियत पता चल गई और उस पर केस हो गया। गुजरात पुलिस ने उसे गिरफ्तार भी कर लिया था। मगर सोहना के पास पुलिस पर हमला करके उसे छुड़ा लिया गया।'' वो अपने बारे में बताती है कि वो बिहार की रहने वाली है। उसके माँ बाप ने मेवात के एक ट्रक ड्राईवर से उसका निकाह करके उसे यहां भेजा था। वहीदा कहती है कि ''उसने अपने पति को ढंग से देखा भी नहीं वो सिर्फ वहां से यहां आने तक कुल दो दिन पति–पत्नी की तरह रहे और दिल्ली रेलवे स्टेशन पर ही उसके पति ने उसे वहाब को थमा दिया और फिर शोषण का सिलसिला शुरू हुआ। वो याद करते हुए कहती है कि ''रोते थे कि या अल्लाह इस जहन्नुम से निकाल दे। थोड़ा खूबसूरत थे इसलिये वो तुरंत बेचना नहीं चाहता था।'' पुराने दिन को याद करते हुए बेचैनी उसके चेहरे पर साफ नजर आती है। पहले दिन उसको समझ आया कि उसे उसके पति ने कोठे पर बेच दिया है। मगर उसे थोड़ा सब्र हुआ कि इससे शादी नहीं हुई तो क्या! शायद वो यहां सबका दिल जीत कर चैन से रह सकती है। इसलिये उसने वहाब के साथ पत्नी की तरह व्यवहार करना शुरू कर दिया। मगर इसका असर ठीक उल्टा हुआ और एक दिन बाहर गांव के किसी आदमी ने उसके साथ बलात्कार किया। सुबह पता चला कि अब उसे उसके साथ जाना होगा। उसका दाम 25 हजार लगा था।

उसने विद्रोह किया और उस घर से भाग कर नुँह आ गई। वहां मिले एक पुलिस वाले के व्यवहार ने उसे और व्यथित कर दिया, वो उधर से भाग कर बस अड्डे के अन्दर बैठ गई। शाम में वहाब जब वहां आया तो उसने उसे वहीं मारना, पीटना शुरू कर दिया। हंगामे की वजह से नेताजी (बड़ा प्रभावशाली नाम है इसलिए लिखना उचित नहीं) आ गये। उन्होंने फैसला किया कि लड़की जहां चाहे वहां रहेगी। पुलिस केस आदि के डर से वहाब डर गया और वहीदा को नेता जी ने आसरा दिया। जहां उसने तय कर लिया कि वो अब पैसा लेकर अपनी देह परोसेगी। सिर्फ खाने–रहने के एवज में वो नेता जी की रखैल क्यों बने या कहीं जाये। फिर उसने यौनकर्म अपना लिया। अब वो वहीं किराये के घर में रहती है और गुड़गांव व अलवर भी अपने काम से आती–जाती है।

वो कहती है ''जब यही करना है तो घर में बंधे क्यों। अपनी पसन्द नापसन्द को जाहिर क्यों ना करे।'' वो घर अपने माँ–बाप के पास नहीं जाना चाहती, कहती है कि ''फूटी किस्मत लेकर पैदा हुए थे क्या मुँह दिखायेंगे।''

IV

नाम – वाजदा
उम्र – 35 वर्ष
मूल राज्य – प0बंगाल
वर्तमान में पुनहाना

वाजदा शिकरावा में रहती है। उसकी आय का साधन भीख है। इसके पति ने इसकी जानकारी में छः पारो लड़कियां रखी हैं। सब लड़कियां तो भाग गई, मगर ये लगातार टिकी रही, ताकि आस जिन्दा रहे और उसे पत्नी का दर्जा मिल सके।

वाजदा को यहां रहते कितने वर्ष हुए उसे याद नहीं। वो बताती है कि ''जब उसकी सगी चचेरी बहन को उसके पति ने रखा, तब से वो भीख मांगने लगी। ये कोई पांच बरस पहले की बात है। जब उसे इस वायदे के साथ मायके से लड़की लाने को भेजा गया कि उसके बाद वाजदा का पति उसे अपने परिवार में इज्जत से रखेगा। वाजदा ने अपनी बहन को अपनी खुशी पर कुरबान करने की कोशिश की। मगर उसके पति ने उसी की बलि ले ली। उसकी बहन को अपने पास रख लिया और इसको भीख मांगने पर मजबूर होना पड़ा।

वो शिकरावा व पुनहाना बाजार के आस-पास अपनी बेटी के साथ, जिसकी शादी करना उसकी चिन्ता है, अक्सर ही मिल जायेगी। वो बताती है कि ''आजकल जमाना खराब है, इसलिये बेटी की जितनी जल्दी शादी हो जाये बेहतर है। उसने वर्ष भर पहले ही एक लड़की की शादी करवाई है। वो लड़की उसके पति द्वारा लाई गई एक 'पारो' की बेटी थी। जिसको छोड़ कर वो 'पारो' भाग गई। उस लड़की को अपनी बेटी समझ वाजदा ने पाला और फिर 50 हजार दहेज देकर उसकी शादी की। ताकि अल्लाह उसकी बेटी को इसका सिला दे।

वाजदा कहती है किस से शिकायत करें और क्यों? मेरी किस्मत में जो था, सो हो गया। उसे अपने पति पर भी गुस्सा नहीं आता। वो उसके हर रूप को स्वीकारती है। उसके अनुसार ये तो फिर भी अच्छा है, कम से कम बेचता तो नहीं है। उसकी इच्छा है मौत उसके पति के घर में हो और बेटी का मायका सलामत रहे। वो अपनी बहन से हुए बेटे को पढ़ाना भी चाहती है।

वाजदा अपनी राजनैतिक जागृति का परिचय देती हुई सी.पी.एम के कार्यालय का पता पूछती है ताकि उसका राशन कार्ड बन जाये और उसे सस्ता राशन प्राप्त हो सके।

वाजदा ने वर्ष भर पहले ही एक लड़की की शादी करवाई है। वो लड़की उसके पति द्वारा लाई गई एक 'पारो' की बेटी थी। जिसको छोड़ कर वो 'पारो' भाग गई।

चित्र 15: मेवात

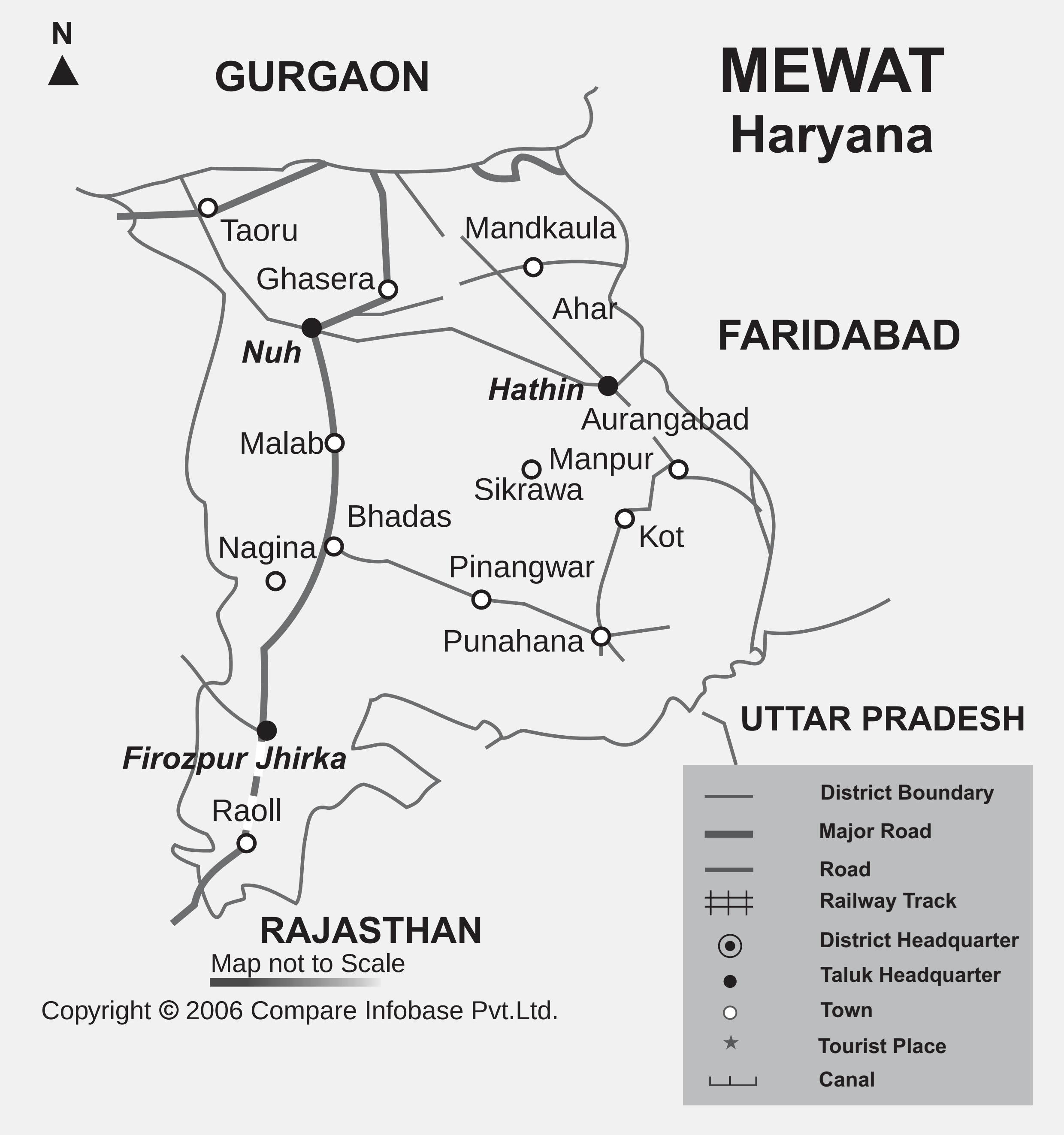
N
GURGAON
MEWAT
Haryana
Taoru
Mandkaula
Ghasera
Ahar
FARIDABAD
Nuh
Hathin
Aurangabad
Malab
Manpur
Sikrawa
Bhadas
Kot
Nagina
Pinangwar
Punahana
UTTAR PRADESH
Firozpur Jhirka
Raoll
RAJASTHAN
Map not to Scale
Copyright © 2006 Compare Infobase Pvt.Ltd.
District Boundary
Major Road
Road
Railway Track
District Headquarter
Taluk Headquarter
Town
Tourist Place
Canal

परिशिष्ट - 1

क्षेत्र	1874 वर्ग किलोमीटर
अक्षांश (Latitude)	26 से 30 डिग्री के बीच उत्तर
दक्षांश (Longitude)	76 से 78 डिग्री के बीच पूरब
अनुमण्डल	3
त्हसील	5
सह तहसील	1
विकास खण्ड	6
कुल गॉव	491
शहर	5
जनसंख्या	1178000 (अनुमानतः 2003)
कुल पुरुष	624340
कुल महिलायें	553660
कुल ग्रामीण जनसंख्या	1001869
पुरुष	537035
महिला	464834
प्रतिशत में	92.93%
कुल शहरी जनसंख्या	76131
पुरुष	40898
महिला	35233
प्रतिशत में	7.06%
साक्षर	271492
पुरुष	228216
महिला	43276
कुल वन क्षेत्र	39 वर्ग किलोमीटर
औसत वर्षा	4.78 (इंच)

खेती 	गांव के दस्तावेज के अनुसार कुल इलाका (हेक्टेयर लाख में) = 1.86 दिखाया गया वास्तविक इलाका (हेक्टेयर लाख में) = 1.46 बार बार दिखता इलाका (हेक्टेयर लाख में) = 0.66 ट्रैक्टर = 5021
सिंचाई 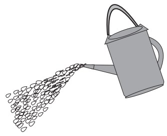	वास्तविक सिंचित इलाका (हेक्टेयर) = 42600 ट्यूबवेल और पम्पसेट = 18553
पशु पालन 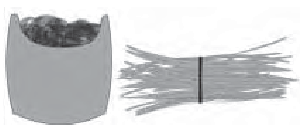	कुल पशु संकलन = 386 पशुचिकित्सा संस्थान = 108
स्वास्थ्य 	सी.एच.सी. = 4 पी.एच.सी. = 15 उप केन्द्र = 76 आयुर्वेदिक = 26 होम्योपैथिक = 11
शिक्षा 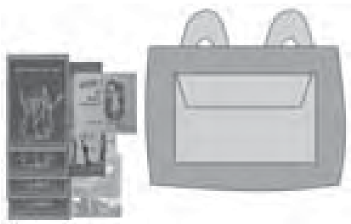	प्राथमिक विद्यालय = 425 माध्यमिक विद्यालय = 72 हाई स्कूल = 82 हायर सेकेन्डरी स्कूल = 12 बाल भवन = 3 महाविद्यालय = 3 पालीटेकनीक = 1 आई.टी.आई. / वी.ई.आई. = 3+4 = 7 टीचर ट्रेनिंग संस्थान = 1
बैंक 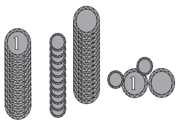	व्यवसायिक बैंकों की संख्या = 16
सड़कें 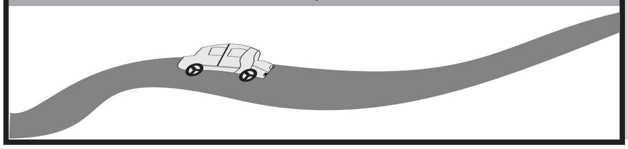	पक्की सड़क की कुल लम्बाई (कि.मी. में) = 270.46 सड़क से जुड़े गांव और शहर = 491

परिशिष्ट - 2

इतिहास पर एक नजर

यहां ऐतिहासिक चरित्र राम एवं कृष्ण को दादा पुकारते हैं। ग्यारहवीं शताब्दी में मुस्लिम धर्म अपना लेने वाली ये जाति राजपूत है। जिनका नृवंश जाटों और मीणाओं से मिलता है। यानी इनमें कुछ के गोत्र जाटों और कुछ के मीणाओं के हैं। जिन्होनें अपनी सांस्कृतिक विरासत बड़ा सहेजकर रखी है। अन्य मुसलमानों के उलट इनके रीति रिवाजो में सनातनी छाप दिखती है। इनके प्रमुख त्यौहारों में ईद के अलावा होली, दीवाली भी शामिल है। ये संगोत्रीय विवाह निषेध मानते हैं तथा आज से 20 वर्ष पूर्व बिना अग्नि का फेरा लिए 'विवाह' को सम्पन्न नहीं मानते थे। इस क्षेत्र में हिन्दु मुसलमान नहीं जातिय युद्ध ही मायने रखता था। भरतपुर राजा की ओर से लड़ाकुओं के रूप में ये मुगल-सत्ता और अंग्रेजों को चुनौती देने में सहायक रहे। यद्यपि इस जाति से कोई राजा नहीं हुआ और न कोई जमींदार और ना ही जाट राजाओं के सेनानायक रहे। बल्कि ये हमेशा सिपाहियों की भूमिका तक ही सीमित रह गये। यहां तक की इनकी अपनी जमीन पर तुगलकों के जमाने से ही खानजादों (तुर्क या अफगानों) ने जागीरें चलाई और मेवों को लुटेरा और दौड़ाई कहा। कहते हैं कि उस समय सूरज के डूबते ही मेव निकलते थे और खानजादों के यहाँ लूटमार मचती थी। दरअसल ये पूरी तरह से लुटेरे थे जो व्यवस्थित रूप से राज्य चलाने के बजाय सम्पत्ति लूटकर जंगलों में भाग जाते और तब तक नहीं निकलते जब तक कि उनके खाने की कमी ना पड़ने लगे। ये बड़े समूहों के बजाय छोटे-छोटे गुटों में रहा करते थे। ताकि सरकारी अमलों से बचकर आसानी से भागा जा सके।

महाभारत का स्थानीय संस्करण है 'पाण्डु कडा' जिसकी रचना सादुल्लाह खाँ (जिन्हें यहां कौमी शायर कहा जाता है) ने 18वीं शताब्दी में की थी। 'पांडु कडा' मिथय्क से भी कहीं अधिक गूढ़ और इनकी सांस्कृतिक पहचान का घोर आवरण है। ये पद्य रचना है जिसे सफेद कुर्ता धोती पहने मिरासी या जोगी बड़े सम्मान से प्रस्तुत करते हैं। 3 या उससे कुछ अधिक घंटे में गाया जाने वाला ये पद्य 800 श्लोकों से निर्मित है। इन्हें गाने से पूर्व ये पैगम्बर मुहम्मद साहब व ख्वाजा मोइनउद्दीन चिश्ती के सम्मान में गाते हैं। 'पाण्डु कडा' केवल मनोरंजन का साधन नहीं अपितु सांस्कृतिक पहचान और पूर्वजो के सम्मान से जुड़ी है।

लम्बे समय तक अपनी सांस्कृतिक पहचान को बरकरार रखने वाली ये जाति ग्यारहवीं और बड़े पैमाने पर चौदहवीं शताब्दी में मुसलमान तो हो गयी थी, मगर इनका रहन-सहन और मान्यताएं पूर्ववत थीं। मस्जिदों में इबादत के अलावा अक्सर ये मन्दिरों में पूजा भी कर लिया करते थे। विशम्भर खाँ अर्जुन आदि नाम वाले मुस्लिम लोग यहां अक्सर मिलेंगे। जिन्हें इनकी संस्कृति से जोड़ कर देखा जा सकता है।

इस जाति के सामूहिक धर्म परिर्वतन के संदर्भ में अनेकों कथायें प्रचलित हैं। जिनमें ये कि राजाओं ने इन्हें जोर जबर्दस्ती से मुसलमान बनाया या फिर बादशाह या शाही

फौज के सिपाही इनकी लड़कियों को ना उठायें इसलिए इन्होंने स्वेच्छा से मुसलमान होना बेहतर समझा। वहीं एक दूसरी राय भी प्रचलित हैं जिसके अनुसार इस बर्बर कौम को इस्लामी जामा सूफी मत ने पहुंचाया। इसकी पुष्टि वो मजार भी करती हैं जो 14वीं, 16वीं शताब्दी की हैं। घोड़चढ़ी खान, मेव दादा बहाड जैसे जातिय शौर्यवीरों के आवासों की स्थापत्य कला भी भरतपुर महाराजा या अलवर राजा की स्थापत्य कला से काफी भिन्न है। इनके स्थापत्य पर इरानी व तुर्की छाप आसानी से देखी जा सकती है। वास्तव में यहां मुख्य धारा के इस्लाम के बजाय सूफीयों का वर्चस्व रहा। जिन्होंने इनके विद्रोह को नैतिक वैधता दी। जिसके कारण इनका धर्म तो बदला परंतु परम्पराओं में कोई विशेष अंतर नहीं आया। फिर समय ने करवट ली, 1910 के दशक में मौलाना इस्माइल के आगमन से एक मुस्लिम सांस्कृतिक आंदोलन (तबलीगी जमात) आरम्भ हुआ। ये वही समय था जब राष्ट्रीय राजनैतिक नेतृत्व का तेजी से साम्प्रदायिकरण हो रहा था।

अब अरावली की तराई में राम या कन्हैया जी की संतानों या जाटों और मेवों के बजाय हिन्दू और मुसलमान थे। भेदभाव बढ़ा मगर बहुत अधिक नहीं। रीति रिवाजों में अभी तक कोई अंतर नहीं था। संपत्तियों (औरतें भी इसी वर्ग में हैं) की लूट और समान वितरण में भी कोई अंतर नहीं आया था। मगर फिर भी एक अलगाव आ चुका था। फिर 1947 आया और मेव पलायन करने लगे थे। गांधी जी ने घासेडा पहुंच कर उनसे रूकने की अपील की। ये तथ्य बड़ा महत्वपूर्ण है कि 47 के समय पाकिस्तान जाने वाले अधिकांश मेव वापस अपनी जमीन पर लौट आए।

आश्चर्य! हजारों वर्षों से केन्द्रीय सत्ता के घटनाक्रमों से अछुती रही ये बर्बर कौम भी इस आंधी में संस्कृतिकरण के रास्ते चल पड़ी थी। हरियाणा के मेवात में ये विशेष प्रभावशाली रहा। अन्य क्षेत्र आज भी अपनी परम्परा से बावस्ता हैं।

आज से करीब 20 वर्ष पूर्व तबलीगी जमायत और जमायत ए इस्लामी के प्रभाव से इस जाति का मुस्लिम संस्कृतिकरण आरंभ हुआ और फिर यहां अमूल चूल परिर्वतन हुए। अब मिरासीयों की महफिल की भीड़ छंटने लगी और मिरासी भी अब अपना रूप बदलने लगे थे। ईद आदि की नमाज पढ़ भर लेने वाले लोग अब दिन में 5 बार नमाज पढ़ने लगे हैं। एक ओर तबलीगी जमात जहां धार्मिक कर्मकांड के जरीये इनमें परिर्वतन कर रही थी, वहीं जमायत इस्लामी ने इन्हें राजनैतिक प्रशिक्षण देना आरंभ किया। जिससे मजारों की रौनक फीकी पड़ने लगी और अजमेर के सूफी सन्त ख्वाजा मोइनउद्दीन चिश्ती या दादा चोखा के नामलेवा भी शायद ही बचे। सूफी विचारों की जगह उग्र धार्मिकता ने ले ली। अपने धार्मिक व राजनैतिक प्रशिक्षण से 'मेव' देश व दुनिया के मुसलमानों के साथ मुख्यधारा में आना चाहते थे। स्वभावतः ये अब मुस्लिम तौर तरीकों की ओर आकर्षित होने लगे। इनका गोत्रीय याराना बदला और जन्मजात दुश्मनों खानजादा आदि से इनके रिश्ते मधुर हुए।

जमायत इस्लामी और तबलीगी जमात के अंधाधुंध सांस्कृतिक आंदोलन ने तमाम परंपराओं और सद्भावनापूर्ण विचारों को उखाड़ फेंका। मगर आज भी 'मेव' राजनैतिक तौर पर स्वयं को मीणाओं या जाटों से अलग करने की स्थिति में नहीं थे, सो जमायत इस्लामी के आंदोलन ने दम तोड़ दिया। मगर नमाज की दावत देने वाली प्रक्रिया की विविधता और तबलीगी जमात का अराजनैतिक होना इनके सर चढ़ कर बोला। जिससे तबलीगी जमायत ने अपनी गहरी पैठ बना ली।

- जाति (किसानों के) के नाम पर पंजाब के बंटवारे में 'मेवों' को अलग-अलग बांटकर उनकी शक्ति को नियंत्रित करने की सफल कोशिश की गई।

- इस दौरान सरकारी पक्षपात और भेदभाव ने 'मेवों' को बाहरी मुसलमानों से या मुस्लिम मुख्यधारा से अपना संबंध बनाने को मजबूर किया।

- अब शुरू हुआ बाहरी मुसलमानों से संबंध बनाने का सिलसिला और 'मेव' जमुना के पार आये।

- फिर 90के दशक के साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण ने 1992 को रक्तरंजित कर दिया और 'मेवों' के अन्य सभी जातियों से रणनैतिक संबंध हो गये।

बी-114, शिवालिक, मालवीय नगर
नई दिल्ली-110017

दूरभाष : 91-11-26691219, 26691220
टेली फेक्स : 91-11-26691221

ई-मेल : jagori@jagori.org
वेबसाइट : www.jagori.com